Chap-2

द्वितीय अध्याय :
पुष्टिमार्ग का प्रारम्भिक परिचय

पुष्टिमार्ग भावना का मार्ग है अर्थात् पुष्टिमार्गीय सिद्धांतों का विवेचन भावनात्मक स्तर पर ही सम्भव है। इसीलिए इस सम्प्रदाय में सेवा भावना को सर्वाधिक महत्व दिया गया है। यहाँ हर वस्तु और विधान की भावना निश्चित की गई है जैसे सेवा भावना, स्वरूप भावना, श्रृंगार की भावना, सामग्री की भावना, गुरु की भावना, मनोरथों की भावना तथा सम्पूर्ण भाव-भावना। इस तरह यह निश्चित किया जाता है कि भक्त की उदार संवेदनाओं पर इस मार्ग की आस्थाएँ सर्वलम्बित है।

महाप्रभु वल्लभाचार्य ने प्रारम्भ में बाल कृष्ण की उपासना निश्चित करके वात्सल्य रस प्राधान्य भावात्मक परिवेश को भक्ति का मूल आधार माना है। वात्सल्य प्रेम निश्चल एवम् स्वाभाविक आत्मिक संलग्नता का प्रतीक है। श्रीकृष्ण की रसात्मक बाललीलाएँ इस संदर्भ में विशेष चित्ताकर्षक रही हैं और जिनके कारण आम आदमी की संलग्नता भी सहज हो पाई है।

१. पुष्टिमार्ग की स्थापना व व्याख्या :-

१. पुष्टिमार्ग की स्थापना ::

वल्लभाचार्य ने श्रीमद् भागवत् के आधार पर जिस नवीन भक्तिमार्ग का प्रचलन किया वह 'पुष्टिमार्ग' के नाम से प्रसिद्ध है। दार्शनिक जगत् में वल्लभाचार्य का मत शुद्धाद्वैतवाद के नाम से प्रसिद्ध है। शुद्धाद्वैतवाद के लिए आचार्य जी चाहे विष्णुस्वामी के ऋणी रहे हों, किन्तु पुष्टिमार्ग के प्रवर्तक होने का श्रेय तो स्वयं आचार्य वल्लभाचार्य को ही जाता है। वल्लभाचार्य ने अपने ग्रंथ 'सिद्धांत रहस्य' में कुछ इस प्रकार लिखा है – ''श्रावण मास की शुक्ल एकादशी को रात्रि के समय साक्षात् भगवान ने उनसे कहा कि वे जीवों के देह गत पंच दोषों की निवृत्ति के लिए उन्हें ब्रह्म संबंध की दीक्षा दें।''[१]

भगवत् आदेश की पूर्ति के निमीत्त आचार्य जी ने उसी समय अपने प्रमुख सेवक दामोदरदास हरसानी को जगाया और समर्पण मंत्र द्वारा ब्रह्म सम्बन्ध की प्रथम दीक्षा दी। इस प्रकार दामोदरदास जी की दीक्षा द्वारा वल्लभाचार्य ने सं. १५५० की श्रावण शुक्ल एकादशी को ब्रज में गोकुल के गोविंदघाट पर 'पुष्टिमार्ग' की स्थापना की।[२] मंत्र दीक्षा के शुभारम्भ की पुनीत स्मृति के कारण गोकुल के गोविंदघाट की बैठक को आचार्य जी की ८४ बैठकों में प्रथम स्थान प्राप्त है।

कहते हैं कि पुष्टिमार्ग के लिए वल्लभाचार्य को निम्नलिखित आंतरिक प्रेरणा हुई थी "अन्य संप्रदायों (रामानुज, माध्व, निम्बार्क आदि के सम्प्रदाय) में नारद पंचरात्र वैखानसादि शास्त्र प्रतिपादित दीक्षा–पूजा का प्रचार होने से यद्यपि विष्णुस्वामी सम्प्रदाय में आत्म निवेदनात्मक भक्ति की स्थापना की गई है, तथापि वह मर्यादामार्गीय है। अब आपके इस सम्प्रदाय में पुष्टि मार्गीय (अनुग्रह) आत्मनिवेदन द्वारा प्रेम स्वरूप निर्गुण भक्ति का प्रकाश करना है। संप्रति भक्ति मार्गानुयायी जन समाज शांकर सिद्धांत के प्रचार से पथभ्रष्ट हो रहा है, अतः उसके कर्तव्य तो आपके द्वारा ही सम्पन्न हो सकते हैं।"[३]

अतः वल्लभाचार्य ने पूर्व आचार्यों के मर्यादामार्गीय भक्ति सम्प्रदायों से अलग अपने पुष्टिमार्गीय सम्प्रदाय की स्थापना की। वल्लभाचार्य के मतानुसार भगवान के अनुग्रह से ही जीव हृदय में भक्ति का संचार होता है और उसी भक्ति के द्वारा उसका कल्याण होता है।

२. पुष्टि मार्ग की परिभांषायें ::

पुष्टि का अर्थ होता है भगवान् का अनुग्रह। भागवत् के द्वितीय स्कन्ध के दसवें अध्याय के प्रथम श्लोक में भागवत् का विषय निरूपण करते हुए श्री शुकदेव जी ने भगवान् की दस लीलाओं की चर्चा की है –

'अत्र सर्गोविसर्गश्च स्थानं पोषणमूतयः।

मन्वन्तरेशानुकथा निरोधो मुक्तिराश्रयः।।'[४]

प्रस्तुत श्लोक में दी गई दस लीलाओं में पोषण चौथी लीला है। पोषण का अर्थ है– भगवान् का अनुग्रह (पोषण तदनुग्रहः)।

अतः वल्लभ दर्शन के अनुसार भगवद् अनुग्रह ही मोक्ष का प्रधान कारण बताया गया है। पुष्टिमार्ग के अनुसार भगवत् प्राप्ति के लिए ज्ञानादि की अपेक्षा नहीं है। वास्तव में वल्लभाचार्य के सिद्धांत का व्यावहारिक रूप ही पुष्टिमार्ग है। पुष्टिमार्ग में दर्शन व भक्ति का एक अद्भुत समन्वय देखने को मिलता है। वल्लभाचार्य ने वर्ग, जाति और देश आदि के भेद से रहित जीवों के श्रेष्ठ साधन के रूप में, पुष्टि अथवा अनुग्रहमार्ग का प्रचलन किया, जो सर्वाधिक सरल तथा प्राप्य है; यही इस मार्ग की विशेषता है।

वल्लभाचार्य के मतानुसार पुष्टिमार्ग सर्वोत्तम विलक्षण भक्ति मार्ग है। इस भक्ति मार्ग में जीव को अपना सर्वस्व समर्पित करना होता है। इस भक्ति मार्ग में भक्त भगवान् के अनुग्रह के सामने मोक्ष को भी तुच्छ मानता है।[५] इस मार्ग के अन्तर्गत किसी भी प्रकार का कर्मकाण्ड करना आवश्यक नहीं है। इस मार्ग में आयु का भी कोई बन्धन नहीं होता – बाल, युवा, वृद्ध, स्त्रियाँ, शूद्र आदि सभी प्राणी इस मार्ग के साधक बन सकते हैं। इस मार्ग में भगवान् अपनी कृपा से ही मन, वाणी और कर्मों द्वारा आत्मसमर्पण करने वाले जीवों का प्रपंच से उद्धार कर देते हैं। अत्एव पुष्टिमार्ग वह विलक्षण मार्ग है जिसे भगवद्नुग्रह से ही प्राप्त किया जा सकता है।[६]

वल्लभाचार्य ने श्रुति के आधार पर वेदों में भी भगवान् के अनुग्रह पर प्रकाश डाला है।[७] उनका कथन है कि विवेक, धैर्य और भक्ति से रहित पाप कर्म में विशेष रूप से आसक्त भक्तदीन के तो भगवान श्रीकृष्ण ही रक्षक हैं। मुक्ति भगवत् रूप ही होती है, जहाँ भक्त और भगवान् में अभेद सम्बन्ध होता है।

कुछ लोगों ने पुष्टिमार्ग को खाओ, पिओ और पुष्ट रहो – सिद्धांत को माननेवाला विलासी मार्ग भी कहा है और इस मार्ग पर अनेक लांछन और आक्षेपों का आरोप भी लगाया है और यह भी कहा गया है कि इस मार्ग के अनुयायी विषय सुख की ओर ध्यान देते हुए शरीर और इन्द्रियों के पोषण को ही अपना ध्येय बनाते हैं। वल्लभाचार्य तथा उनके बाद के अनेक महान आचार्यों द्वारा लिखित ग्रंथों के अध्ययन से हमें पता चलता है कि वास्तव में पुष्टिमार्ग के सिद्धांतों में विषय सुख के पोषण का कभी भी आदेश नहीं दिया गया। वल्लभाचार्य ने अपने ग्रंथों में स्पष्ट शब्दों में कहा है कि सांसारिक विषयों में

मनुष्य को कभी भी आसक्त नहीं होना चाहिए। आचार्य जी ने अपने 'संन्यास निर्णय' ग्रंथ में कहा है – ''जिनका मन विषयों से आक्रान्त है उनमें प्रभु प्रेरणा का आवेश कभी नहीं होता है।''[८] आचार्य जी के 'विवेकधैर्याश्रय' ग्रंथ में भी यही भाव देखने को मिलता है – ''इन्द्रियों के विषयों को शरीर, वाणी तथा मन से त्याग दे। हर पुरुष को इन्द्रिय दमन करना चाहिए।''[९] 'श्री सुबोधिनी टीका' में आचार्य जी कहते हैं –''जब तक कामादिक दोष नष्ट नहीं होते तब तक भक्ति उत्पन्न नहीं होती।''[१०] आचार्य जी ने भगवान के प्रेम की प्राप्ति के लिए सबसे बड़ा बाधक – सांसारिक विषय का त्याग करना कहा है।

वल्लभाचार्य के बाद विट्ठलनाथ जी ने भी सांसारिक विषयों में अनासक्ति और अन्त में उनके त्याग का ही अपने ग्रंथों में उपदेश दिया है। इन आचार्यों के अतिरिक्त इस सम्प्रदाय के अष्टछाप कवियों व अन्य भक्तों ने भी संसार की असारता दिखाते हुए लौकिक विषयों से अलग रहने का ही प्रबोधन दिया है और भगवद् कृपा को ही श्रेष्ठ साधन बताया है।

वल्लभ सम्प्रदाय के एक सुप्रसिद्ध व्याख्याता गोस्वामी हरिराय जी ने अपने ग्रंथ 'श्री पुष्टिमार्ग लक्षणानि' में पुष्टिमार्ग का परिचय कुछ इस प्रकार दिया है – ''जिस मार्ग में लौकिक तथा अलौकिक, सकाम अथवा निष्काम सब साधनों का अभाव ही श्री कृष्ण के स्वरूप प्राप्ति में साधन है, अथवा जहाँ जो फल है वही साधन है, उसे पुष्टिमार्ग कहते हैं। जिस मार्ग में सर्व सिद्धियों का हेतु भगवान् का अनुग्रह ही है, जहाँ देह के अनेक सम्बन्ध ही साधन रूप बनकर भगवान की इच्छा के बल पर फल रूप सम्बन्ध बनते हैं, जिस मार्ग में भगवद्–विरह अवस्था में भगवान की लीला के अनुभव मात्र से संयोगावस्था का सुख अनुभूत होता है, और जिस मार्ग में सब भावों के लौकिक विषय का त्याग है और उन भावों के सहित देहादि का भगवान् को समर्पण है, वह 'पुष्टिमार्ग' कहलाता है।[११]

३. वल्लभाचार्य प्रणीत तीन मार्ग ::

वल्लभाचार्य ने मुख्यतः तीन मार्ग बताए हैं – पुष्टिमार्ग, प्रवाहमार्ग और मर्यादामार्ग। प्रभु के अनुग्रहात्मक मार्ग को 'पुष्टिमार्ग' कहते हैं, जो भक्तिमार्ग भी है। केवल वेद

प्रतिपादित कर्म और ज्ञान के मार्ग को 'मर्यादा मार्ग' कहते हैं। संसार के प्रवाह में पड़कर लौकिक सुख और भोग के लिए प्रयत्न करना 'प्रवाहमार्ग' कहलाता है।

पुष्टिमार्ग में भी 'आचरण' और 'सिद्धांत' दो मुख्य पक्ष हैं जिन्हें हम 'भक्ति' और 'ज्ञान' के नाम से जानते हैं। पुष्टि सम्प्रदाय के आचरण पक्ष को हम भक्ति पक्ष अथवा स्वाधीन अर्थात् स्वतंत्र निर्गुण भक्ति कहते हैं। तो दूसरी ओर पुष्टि सम्प्रदाय के सिद्धांत पक्ष को हम ज्ञान पक्ष अथवा शुद्धाद्वैत ब्रह्मवाद कह सकते हैं। सम्पूर्ण रूप से देखें तो पुष्टिमार्ग की आचारसंहिता को पृथक्–पृथक् खण्डों में व्याख्यायित किया गया है। यहाँ मैं पुष्टिमार्गीय सिद्धांतों की सामान्य तथा सहज विचारधारा को स्पष्ट कर रही हूँ।

४. पुष्टि मार्ग का भक्ति पक्ष ::

भक्ति शब्द में भज् धातु एवं क्तिन् प्रत्यय है, जिससे भक्ति शब्द सिद्ध होता है। भज् धातु सेवा के अर्थ का द्योतक है, क्तिन् प्रत्यय भाववाची है। अतः भाववाली भगवत्परिचर्यात्मक सेवा को 'भक्ति' कहते हैं।[१२]

भगवत् भक्ति को वैष्णव धर्म की आधार शिला माना गया है। संसार दुःख से छूटकर मुक्ति–लाभ को प्राप्त करने के लिए प्राचीनकाल से भक्ति मार्ग को अपनाया गया है। अगर हम इतिहास की ओर दृष्टि करके देखें तो पता चलता है कि कलियुग में भक्ति मार्ग का पुनः आरम्भ विष्णुस्वामी से हुआ है। उन्होंने श्रीमद् भागवत् पुराण एवं संहिता और वैष्णव तंत्रादि ग्रंथों का अध्ययन कर भगवद् आज्ञा से स्वामी सेवक भाववाली राजसी परिचर्यात्मक सेवा का प्रथम आरम्भ किया था। विष्णुस्वामी का समय विक्रम की पाँचवीं शताब्दी माना जाता है। इनके कुछ समय बाद आठवीं शताब्दी में सम्राट अशोक ने नष्ट हुए बौद्ध मत को पुनः राज्य धर्म के रूप में स्वीकार कर उसका विस्तृत प्रचार किया। जिसके कारण विष्णुस्वामी का भक्ति मार्ग धीरे–धीरे संकुचन के साथ–साथ नगण्य–सा हो गया। तब ही शांकर मत ने जोर पकड़ा और पुनः वैदिक मत की स्थापना की। किन्तु इसमें भी वेद के वाक्यों का अन्यथा अर्थ किया गया, जिसके कारण वेद के वास्तविक रहस्यों पर अंधकार पट आ गया था। कुछ समय बाद विक्रम की दसवीं से लेकर चौदहवीं

शताब्दी तक के काल में भक्ति मार्ग के अनेक आचार्यों का प्रादुर्भाव हुआ। इनमें रामानुजाचार्य, निम्बार्काचार्य एवं माध्वाचार्य प्रधान थे। इन आचार्यों ने पुनः भक्तिमार्ग की स्थापना की और मायावाद का खण्डन किया। इन आचार्यों ने अपने सिद्धान्तों के आधार पर पृथक्–पृथक् सम्प्रदायों की स्थापना की। इनके बाद विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में महाप्रभु वल्लभाचार्य का प्रादुर्भाव हुआ। उस समय के देश काल की परिस्थितियों को जानकर और उस समय की पूजा उपासना की पद्धति में अशुद्धि को देखकर आचार्य चरण ने मनुष्य स्वभाव के सहज अनुकूल भक्ति के प्राचीन तत्वों की शोध करके विष्णुस्वामी मार्ग के साररूप सेवा तत्व का पुनः प्रारम्भ किया। अतः आपने विष्णुस्वामी के संपादित सेवा तत्व की आवश्यक स्नेहानुकूल परिचर्यात्मक क्रियाओं का स्वीकार करते हुए अपना एक अभूतपूर्व एवं विलक्षण सेवा मार्ग का आविर्भाव किया। 'जिसके प्रारम्भ में माहात्म्य ज्ञान के साथ ही स्नेहात्मक भक्ति सुदृढ़ एवं सर्वाधिक रूप में आवश्यक कही गई।'[१३]

अतः हम कह सकते हैं कि पुष्टिमार्ग वह भक्तिमार्ग है जिसमें सभी भक्ति के पूर्वाचार्यों की भक्ति मान्यता का सार अथवा निचोड़ है।

५. पुष्टि मार्ग का ज्ञान पक्ष ::

विद्वानों ने शंकराचार्य के सिद्धांत का सार आधे श्लोक में ही बतलाते हुए कहा गया है–'ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्यं्या, जीवो ब्रह्मैव नापरः' अर्थात् ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है, और जीव ही ब्रह्म है, वह ब्रह्म से अलग नहीं है। इसके विरुद्ध वल्लभाचार्य के सिद्धांत का सार तत्व भी आधे श्लोक में इस प्रकार बताया गया है–'ब्रह्म सत्यं जगत सत्यं, अंशो जीवों हि नापर' अर्थात् ब्रह्म सत्य है, जगत् सत्य है और जीव भगवान का अंश है वह परब्रह्म नहीं है। इस प्रकार विविध आचार्यों के दार्शनिक सिद्धांतों में ब्रह्म, जीव और जगत् के सम्बन्ध में विभिन्न मत प्रकट किये गये हैं। वल्लभ सम्प्रदाय (पुष्टिमार्ग) के शुद्धाद्वैत सिद्धांतानुसार इनके स्वरूप का जो विवेचन किया गया है, उसे संक्षिप्त रूप में मैं यहाँ प्रस्तुत कर रही हूँ–

१. **परब्रह्म – अक्षरब्रह्म –**

वल्लभाचार्य ने शुद्धाद्वैत ब्रह्मवाद में परमतत्व परब्रह्म श्री कृष्ण को ही माना है। शुद्धाद्वैत सिद्धांत के अनुसार परब्रह्म के तीन स्वरूप हैं जो निम्न लिखित है –

आधिदैविक –	परब्रह्म	(या पुरुषोत्तम)
आध्यात्मिक –	अक्षर ब्रह्म	
आधिभौतिक –	जगत्	

परब्रह्म अपनी अनंत शक्तियों के साथ निरन्तर अपने आप में आन्तर रमण करता रहता है, इसलिए उसे 'आत्माराम' भी कहते हैं। जब परब्रह्म को बाह्य रमण की इच्छा होती है तब वह अपनी शक्तियों के साथ बाह्य रूप में रमण करते हैं, जिसे हम 'श्रीकृष्ण भगवान' कहते हैं। इसी आनंद धर्मवाले दिव्य रूप को हम 'पुरुषोत्तम' के नाम से भी जानते हैं। प्रभु के इस रूप में आनंद की चरम अभिव्यक्ति के कारण वह 'आनंदमय', 'अगणितानन्द' तथा 'परमानंद' भी कहलाते हैं। वल्लभाचार्य ने इस परात्पर पुरुष का 'पुरुषोत्तम' नाम भगवद् गीता के आधार पर दिया है।[१४] परब्रह्म तो एक है किन्तु इनके अनेक नाम–रूप कहे गए हैं; इसी कारण ये निर्गुण भी हैं और सगुण भी। ये कर्ता–अकर्ता, सूक्ष्म–स्थूल, कार्य–कारण सब कुछ हैं। अर्थात् परब्रह्म माया से पर होने के कारण ये निर्गुण–निराकार हैं और आनंद के दिव्य गुणों से परिपूर्ण होने के कारण ये सगुण–साकार भी हैं। वल्लभाचार्य जी का कथन है कि परब्रह्म श्रीकृष्ण ही सत्, चित् और आनंद रूप में सर्वत्र विधिमान है जिस कारण इन्हें 'सच्चिदानंद' भी कहते हैं।[१५] अक्षर ब्रह्म से ही इस जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय आदि समस्त कार्य सम्पन्न होते हैं। किन्तु इन कार्यों के होने पर अक्षर ब्रह्म के मूल स्वरूप में कोई विकास (परिवर्तन) नहीं होता। इसलिए श्री कृष्ण ने गीत में 'अक्षरदपिचोतमः' कहा है। अक्षर ब्रह्म सर्व काल निर्विकार ही बना रहता है। अक्षर ब्रह्म में आनंद अंश का तिरोधान (अन्तरध्यान) रहता है किन्तु परब्रह्म तो आनन्द से सर्वथा परिपूर्ण रहता

है। इसीलिए कहते हैं कि ब्रह्म के इन स्वरूपों की प्राप्ति में भी अन्तर है। अक्षर ब्रह्म केवल विशुद्ध ज्ञान द्वारा ही प्राप्त होते हैं, परन्तु परब्रह्म पुरुषोत्तम की प्राप्ति का एकमात्र साधन है अनन्य भक्ति। इस प्रकार विस्तृत अध्ययन द्वारा हम कह सकते हैं कि (पुष्टिमार्ग) वल्लभ सम्प्रदाय के दार्शनिक सिद्धांत में वेद, वेदांत और पुराणादि धर्म ग्रंथों की एक वाक्यता प्रमाणित की गई है।

२. जगत् – संसार –

शुद्धाद्वैत सिद्धांत के अनुसार जगत् परब्रह्म का आधि भौतिक स्वरूप है। ब्रह्म से जगत् की उत्पति होने के कारण जगत् भी ब्रह्म की तरह सत्य है। इसमें 'सच्चिदानंद' का सत् भाव तो आविर्भूत (प्रकट) है परन्तु चित् और आनन्द भाव तिरोहित (छिपा हुआ) है। जगत् भगवान का कार्य रूप होने से यह भगवद् रूप भी है। जब भगवान को बाह्य रमण की एवं क्रीड़ा की इच्छा होती है तो भगवान् इस जगत् रूप में आविर्भूत (प्रकट) होते हैं।

वल्लभाचार्य की दृष्टि में जगत् और संसार दो भिन्न–भिन्न पदार्थ हैं। भगवान की दो शक्तियाँ हैं–माया और अविद्या। भगवान् की माया शक्ति का कार्य जगत् है और अविद्या शक्ति का कार्य संसार है। जगत् को प्रभु माया द्वारा चलाते हैं, किन्तु संसार में हमें अविद्या की कृति देखने को मिलती है जो 'मैं' और 'मेरा' के भाव में निहित है। इसलिए संसार असत्य है। जब तत्वज्ञान प्राप्त होता है तो सब कुछ ब्रह्म रूप है यह पता चलता है, जिससे संसार की अविद्या का नाश होता है किन्तु जगत् ज्यों का त्यों विद्यमान रहता है। अतः 'जगत्' और 'संसार' का यह भेद इस सिद्धांत व सम्प्रदाय की विशेषता है।

३. जीव –

वल्लभाचार्य ने जीव को ब्रह्म का अंश कहा है। ब्रह्म का अंश होने के कारण जीव भी सत्य है। जिस प्रकार अग्नि से छोटी–छोटी चिनगारियाँ निकलती हैं, उसी

प्रकार जीव भी ब्रह्म की छोटी–छोटी स्फुलिंग अग्नि का अंश है। अज्ञान का नाश होने पर जीव पुनः ब्रह्म हो जाता है। वल्लभाचार्य के अनुसार जीव अल्पज्ञ है, ब्रह्म सर्वज्ञ है। जीव और ब्रह्म में यह अंतर है कि जीव की शक्ति अपनी सत्ता के अनुसार सीमित है, जबकि ब्रह्म की शक्तियाँ असीम और अनन्त हैं। वल्लभाचार्य ने जीव की तीन अवस्थाएँ मानी हैं – शुद्ध, संसारी और मुक्त। जब जीव अविद्यादि धर्मों से पूर्णरूप से मुक्त रहता है तथा जीव में आनंदात्मक भगवदैश्यादि धर्मों की स्थिति रहती है उस अवस्था में जीव ब्रह्मरूप हो जाता है। अतः इस जीव को 'शुद्ध जीव' कहते हैं। जब ईश्वर की इच्छा से जीव का माया से सम्बन्ध होता है तब जीव में आनंदात्मक भगवदैश्यादि धर्म का तिरोधान होता है। उस समय जीव 'मैं' और 'मेरा' की मिथ्या कल्पना करता हुआ संसार की मोह – माया में फँसकर अपना सत्य स्वरूप भूल जाता है उसे 'संसारी जीव' कहते हैं। संसारी जीव भी दो प्रकार के होते हैं – दैवी और आसुरी। जब जीव संसारी कष्टों को भोग कर स्वयं को ईश्वर आधीन मान लेता है और पुनः भगवान की शरण में जाता है तब माया के भ्रम–जाल से मुक्त होकर वह अपने मूल स्वरूप को पाता है जिसे 'मुक्त जीव' कहते हैं। वल्लभाचार्य के मतानुसार जीव को अपनी तीनों अवस्थाओं में भगवान का भजन करना चाहिए।

४. माया –

वल्लभाचार्य ने भागवत् की सुबोधिनी टीका में माया के दो रूप बताए हैं – व्यामोहिका और करण। व्यामोहिका भगवान के चरणों की दासी है, अतः भगवद् इच्छा से कार्य करती है। करण मायारूप भगवान के द्वारा जगत् की उत्पत्ति, उसका पालन और संहार का कार्य करती है।

५. आविर्भाव–तिरोभाव शक्ति –

आविर्भाव का अर्थ है उत्पति और तिरोभाव का अर्थ है नाश। भगवान अपनी इन शक्तियों का उपयोग जगत् की उत्पति व नाश के लिए करते हैं। जगत् का यह अविर्भाव और तिरोभाव एक मात्र भगवद् इच्छा पर आधारित रहता है।

२. पुष्टि भक्ति का स्वरूप :-

१. पुष्टि भक्ति ::

भक्ति वल्लभ दर्शन का प्रमुख अंग है। इसी कारण श्री वल्लभ ने अपने ग्रंथों में भगवान् 'श्री कृष्ण' की भक्ति को मुक्ति का एक मात्र साधन माना है। पुष्टिमार्गीय भक्ति में आरम्भ से अंत तक प्रेम की प्रधानता है अतः इसे 'प्रेमलक्षणा भक्ति' भी कहते हैं।

२. शुद्ध पुष्टि ::

वल्लभाचार्य का मत है कि भक्ति मार्ग शुद्ध प्रेम द्वारा की गई सेवा का मार्ग है इसलिए उन्होंने जीव मात्र के कल्याण के लिए भक्ति और सेवा को एक दूसरे से सम्बद्ध कर दिया है। वल्लभाचार्य ने विशुद्ध प्रेम को 'शुद्ध पुष्टि' बतलाया है। गोपियाँ विशुद्ध प्रेम की प्रतीक मानी गई हैं। वल्लभाचार्य ने गोपियों को तीन श्रेणियों में विभाजित कर उनकी भक्ति भावना को बताया है – ब्रजांगनाएँ, गोप कुमारिकाएँ और गोपांगनाएँ।

३. वात्सल्य भाव भक्ति ::

ब्रजांगनाओं ने श्री कृष्ण का बाल भाव से भजन किया, अतः उनकी भक्ति वात्सल्य भावना की है। पुष्टि सम्प्रदाय की नित्य सेवा–विधि में भी वात्सल्य भक्ति की प्रधानता है।

४. स्वकीया (पत्नि) भाव भक्ति ::

गोप कुमारिकाओं ने कात्यायनी व्रत से श्री कृष्ण को पति रूप में प्राप्त करने के लिए भक्ति की, जो स्वकीया (पत्नि) भाव की भक्ति है।

५. परकीया (प्रेयसी) भक्ति ::

जबकि गोपांगनाओं ने लोक, वेद आदि के भय से मुक्त होकर परकीया (प्रेयसी) भाव की भक्ति की है। वल्लभाचार्य ने श्री राधाजी का भी यथोचित महत्व स्वीकार किया है। विट्ठलनाथ जी ने सेवा का विस्तार कर राधा–कृष्ण की युगल जोड़ी की सेवा का प्राधान्य किया था।

विट्ठलनाथ जी ने श्रृंगार का महत्तम रूप प्रस्तुत कर 'श्रृंगार रस मण्डनम्' ग्रंथ लिखा है, जिसमें हमें स्वकीया और परकीया भक्ति रूप देखने को मिलता है। स्वकीया भक्ति रूप में श्री राधा का आधिपत्य है तो परकीया भक्ति रूप में अन्य गोप कुमारिकाओं का दर्शन होता है। हरिराय जी ने स्वकीया–परकीया भक्ति के दो रूप और माने हैं – संयोग और वियोग। इनमें वियोग के भाव को सर्वोपरि माना गया है। आत्मा और परमात्मा का मिलन आवश्यक है। आत्मा अपने परमात्मा की प्राप्ति के लिए अनेक रूपों में उनकी भक्ति करती है, जिनमें वियोग श्रृंगार रूप भक्ति का प्राधान्य है; इसे कान्ता प्रेमरूपा भक्ति भी कहते हैं। पुष्टिमार्ग के जो अष्टछाप कवि हैं उनकी भक्ति साख्य रूप की तथा दास्य रूप की है।

६. नवधा भक्ति ::

वल्लभ ने नवधा भक्ति को पुष्टिमार्ग में यथोचित स्थान दिया है।[१६] जैसे प्रभु का श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद सेवन; वन्दन करना आदि। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि पुष्टि सम्प्रदाय में वात्सल्य भक्ति, नवधा भक्ति, स्वकीया और परकीया (कान्ता) भक्ति तथा ब्रह्म भाव की निर्गुण भक्ति भी की जाती है। वल्लभाचार्य का कथन है – 'श्री कृष्ण कृत गीता ही एक मात्र शास्त्र है, श्री कृष्ण ही एक मात्र

आराध्य देव हैं, श्री कृष्ण का नाम ही एक मात्र मंत्र है, और श्री कृष्ण की सेवा ही एक मात्र कर्तव्य कर्म है।'[१७]

७. वल्लभाचार्य भक्ति के प्रकार ::

वल्लभाचार्य ने भक्ति के दो प्रकार बताए हैं – मर्यादा भक्ति और पुष्टि भक्ति। जो भक्ति मनुष्य को अपने कर्म और साधनों से प्राप्त होती है वह 'मर्यादा भक्ति' कहलाती है और जिसमें भगवान जीवों पर स्वयं दया करके, स्वयं अनुग्रह की अभिव्यक्ति करते हैं वह 'पुष्टि भक्ति' कहलाती है। वल्लभ के अनुसार जीव को अपना सर्वस्व भक्ति–भाव से प्रभु के श्री चरणों में समर्पित कर देना चाहिए। इसी कारण वल्लभ ने आत्मनिवेदन अथवा शरणागति को अत्यधिक महत्व दिया है।

३. पुष्टि सम्प्रदाय की शरण दीक्षाएँ :-

१. समर्पण (आत्म निवेदन) अर्थात् ब्रह्म सम्बन्ध ::

पुष्टि मार्ग में समर्पण (आत्म निवेदन) अर्थात् ब्रह्म सम्बन्ध को बड़ा महत्व दिया गया है। संसार की विषय–वासना का त्याग कर जीव को अपना सर्वस्व परब्रह्म श्री कृष्ण के चरणों में आत्म निवेदन कर उनका अनुग्रह प्राप्त करना 'समर्पण' अर्थात् 'ब्रह्म सम्बन्ध' कहलाता है। इस दीक्षा को प्राप्त करने के पश्चात् साधक को एक विशिष्ट प्रकार का रहन–सहन और आचार–विचार का पालन करना पड़ता है। इस दीक्षा का अभिप्राय यह है कि जीव अविद्या के कारण ब्रह्म से अपना सम्बन्ध भूल गया है और इस जन्म मरण के चक्कर में फँसा हुआ है। गुरु उस विस्मृत सम्बन्ध की पुनः याद दिलाते हैं और जीव का प्रभु के चरणों में आत्मनिवेदन कराते हैं। जीव भी भक्ति भाव से अपने दोषों की निवृत्ति के लिए श्री कृष्ण की शरण में जाता है। इस प्रकार आत्म–निवेदन, सम्बन्ध–स्थापन और शरण–गमन इन तीनों के एकीकरण को 'ब्रह्म समबन्ध' कहते हैं।

२. समर्पण मंत्र ::

SMT. HANSA MEHTA LIBRARY

वल्लभाचार्य के प्रतिनिधि के रूप में उनका वंशज कोई भी गोस्वामी आचार्य जिस मंत्र से जीव का श्री कृष्ण के चरणों में आत्मनिवेदन अर्थात् समर्पण कराता है वह इस प्रकार है – ''श्री कृष्णः शरणं मम। सहस्त्र परिवत्सरमित काल, जात कृष्ण वियोग जनित ताप क्लेशानंद तिरोभावोहं, भगवते कृष्णाय देहेन्द्रिय प्राणान्तः करणानि तद्धर्माश्च दारागार पुत्रवितेहापरणि आत्मना सह समर्पयामि। दासोंह कृष्ण तवास्मि।'' इसका अभिप्राय इस प्रकार है – 'हे, कृष्ण मैं आपकी शरण में हूँ। सहस्त्रों वर्षों से मेरा श्री कृष्ण से वियोग हुआ है। वियोगजन्य ताप और क्लेश से मेरा आनंद तिरोहित हो गया है, अतः मैं भगवान् श्री कृष्ण को देह, इंद्रिय, प्राण, अन्तःकरण और उनको धर्म, स्त्री, गृह, पुत्र, वित्त और आत्मा सब कुछ अर्पित करता हूँ। हे कृष्ण, मैं आपका दास हूँ, मैं आपका ही हूँ।' यह चौरासी अक्षरों का गद्य मंत्र कहलाता है, जो ब्रह्म सम्बन्ध की विशिष्ट दीक्षा है। सामान्य दीक्षा अष्टाक्षर मंत्र 'श्री कृष्णः शरणं मम'से अथवा पंचाक्षर मंत्र 'कृष्ण तवास्मि' से ही दी जाती है। अष्टाक्षर मंत्र को नाममंत्र भी कहते हैं।

प्रसिद्ध है कि श्री नाथ जी (श्री कृष्ण) ने यह मंत्र वल्लभाचार्य को स्वयं बतलाया था। ''जा जीव को तुम ब्रह्म सम्बन्ध करावोंगें तिनसों हीं बोलूंगों, तिनही के अंग सों अपनो अंग स्पर्श करूंगों, तिनही के हाथ को आरोगूंगों। ये तीन वस्तु तिहारे सम्बन्ध बिना काहूको सिद्ध न होंगी।''[१८]

३. समर्पण मंत्र की विधि ::

नाममंत्र अर्थात् अष्टाक्षर मंत्र की दीक्षा जन्म के ४१वें दिन से लेकर कभी भी दी जा सकती है। यह दीक्षा मनुष्य के अलावा राक्षस, यवन, बलाई, हंस–हंसनी, कबूतर आदि को भी दी जा सकती है। २५२ वैष्णवन की वार्ता में इसका निश्चय भी होता है।

पुष्टि सम्प्रदायी साहित्य में समर्पण अर्थात् मंत्र दीक्षा की कई विधियों का उल्लेख मिलता है, जो इस प्रकार है – १. पत्र द्वारा मंत्र लिख कर भेजना, २. किसी भी समय और किसी भी स्थान पर अधिकारी भक्त को मंत्र देना तथा ३. विशेष विधिपूर्वक श्री ठाकुरजी के सान्निध्य में मंत्र देना। उक्त विधियों में प्रथम विधि राजघरानों की अंतःपुरवासिनी महिलाओं के लिए थी।[१९] दूसरी विधि उन जीवों के लिए थी जिन्हें धार्मिक विधि–विधान की अधिक आवश्यकता नहीं थी। इस प्रकार की दीक्षा वल्लभ ने सूरदास को दी थी।[२०] तीसरी विधि आज भी प्रचलित है। इसमें दीक्षार्थी को पहले दिन व्रत करना पड़ता है और दूसरे दिन स्नान करके वह आचार्य की सेवा में उपस्थित होता है। उस समय आचार्य उसे ठाकुर जी के सम्मुख समर्पण मंत्र सुना कर दीक्षित करते हैं।

दीक्षा देने का अधिकार वल्लभाचार्य ने अपने वंशज आचार्यों को ही दिया है। आचार्य ने उच्च कुल के हिन्दुओं के साथ शूद्रों और मुसलमानों को भी पुष्टि सम्प्रदाय में सम्मिलित होने का अधिकार दिया है।[२१]

४. समर्पण एवं दान में अन्तर ::

समर्पण एवं दान में अन्तर होता है। दान की हुई वस्तु का पुनःग्रहण नहीं किया जाता है, किन्तु भक्ति मार्ग में समर्पित वस्तु का प्रसाद रूप में पुनःग्रहण किया जा सकता है। इसमें लोकप्रसिद्ध स्वामी–सेवक का सा व्यवहार रहता है।

४. पुष्टिमार्गीय सेवा :-

१. सेवा व पूजा में अंतर ::

वल्लभ ने भगवान् श्री कृष्ण की सदैव सेवा करना जीव का आवश्यक कर्तव्य बतलाया है। साधारणतः सेवा और पूजा समानार्थक माने जाते हैं, किन्तु पुष्टिमार्ग में इनमें भेद माना गया है। उपास्य देव की स्नेहपूर्वक की गई परिचर्या

'सेवा' कहलाती है। किन्तु धार्मिक विधि विधान से की गई परिचर्या 'पूजा' कहलाती है। सेवा पुष्टिमार्गीय सम्प्रदाय की विशेषता है, जबकि पूजा मर्यादा मार्गीय सम्प्रदायों में प्रचलित है।

२. पुष्टिमार्गीय सेवा के प्रकार ::

वल्लभ ने सेवा के दो प्रकार बतलाए हैं–'क्रियात्मक सेवा और भावात्मक सेवा'। क्रियात्मक सेवा भी दो प्रकार की है–तनुजा और वित्तजा। अपने आप तथा स्त्री, पुत्र कुटुम्बादि द्वारा की गई शारीरिक सेवा 'तनुजा' कहलाती है। जबकि धन सम्पत्ति तथा उससे सम्बन्धित समस्त साधनों से की गई सेवा 'वित्तजा' कहलाती है। जो सेवा सर्वरूपेण भगवान् में चित्त को प्रवीण कर की जाती है अर्थात् मन से की जाती है उसे 'मानसी सेवा' कहते हैं।

३. पुष्टिमार्गीय सेवा का क्रम ::

पुष्टिमार्गीय सेवा के दो क्रम हैं– (१) प्रातः काल से सायंकाल पर्यंत की 'नित्योत्सव सेवा' तथा (२) बारह महिनों और छहों ऋतुओं की 'वर्षोत्सव सेवा'। नित्य सेवा विधि में वात्सल्य भाव की प्रधानता है। ब्रजांगनाओं ने श्रीकृष्ण के बाल रूप की सेवा प्रातःकाल के जागरण से सायंकालीन शयन पर्यंत तक की है। नित्योत्सव सेवा में आठ समय के उल्लेख है – मंगला, श्रृंगार, ग्वाल, राजभोग, उत्थापन, भोग, संध्या आरती और शयन। इस सेवा के कारण मन निरन्तर कृष्ण में लगा रहता है। वर्षोत्सव सेवा विधि में द्वादश मास एंव षट् ऋतुओं के उत्सवों, अवतारों की जयंतियों, लोक–त्यौहारों और वैदिक पर्वों का समावेश किया गया है।

५. पुष्टिमार्ग के सेव्य स्वरूप :-

पुष्टि सम्प्रदाय के परम आराध्य देव 'श्रीनाथजी' हैं, जो परब्रह्म श्री कृष्ण के अवतार रूप में ब्रज में प्रकट हुए हैं। श्रीनाथजी का स्वरूप श्री कृष्ण की बाल्य व

किशोर अवस्था का है और जिन्होंने ब्रज में गिरिराज पर्वत को धारण किया था, अतः इन्हें गिरिराजधरण कहते हैं। इनकी उर्ध्व भुजा के कारण इन्हें 'गिरिधर' तथा 'गोवर्धननाथ' भी कहते हैं। गाय श्री नाथ जी को अति प्रिय थी, अतः इन्हें 'गोपाल' भी कहते हैं। इस सम्प्रदाय में श्री नाथ जी के अलावा अन्य श्री जी स्वरूप भी विद्यमान हैं, जो इस प्रकार हैं –

१.	श्री नाथ जी	–	जतीपुरा (श्री नाथद्वारा)
२.	श्री नवनीतप्रिय जी	–	श्री नाथद्वारा
३.	श्री मथुरेश जी	–	जतीपुरा (ब्रज)
४.	श्री विट्ठलनाथ जी	–	श्री नाथद्वारा
५.	श्री द्वारकाधीश जी	–	काँकरोली
६.	श्री गोकुलनाथ जी	–	गोकुल
७.	श्री गोकुलचन्द्रमा जी	–	कामवन
८.	श्री मदनमोहन जी	–	कामवन
९.	श्री बालकृष्ण जी	–	सूरत
१०.	श्री कल्याण राय जी	–	बड़ौदा
११.	श्री मुकुन्द राय जी	–	काशी

श्रीनाथजी सहित ये स्वरूप श्री कृष्ण के नौ विशिष्ट रूपों के प्रतीक नव निधि रूप हैं। इस सम्प्रदाय में इन स्वरूपों के अतिरिक्त गिरिराज पहाड़ी और यमुना नदी की भी बड़ी महत्ता बतलाई है और इन्हें भी सेव्य स्वरूप माना गया है। श्री गिरिराज जी को श्री कृष्ण का सखा और श्री यमुना जी को उनकी पटरानी माना गया है। इस कारण पुष्टि सम्प्रदाय वालों को श्री गिरिराज जी की परिक्रमा करना आवश्यक माना गया है। इसलिए प्रति वर्ष ब्रज यात्रा के समय श्री गिरिराज जी में अनेक उत्सव और समारोह होते हैं।

पुष्टि मार्गीय नव निधि प्रतिमा स्वरूपों की संक्षिप्त व्याख्या –

१. श्रीनाथजी – ये अपना वाम हस्त उठा कर अपने भक्तों को निकुंज में आने को आमंत्रित करते हैं।
२. श्री नवनीतप्रिया जी – ये अपने हाथ में मक्खन लिये हुए हैं।
३. श्री मथुरेश जी – ये गायों को चरा रहे हैं।
४. श्री विट्ठलनाथ जी – गोपियों के गीत गाते समय कृष्ण की कटि पर भुजाओं का रखना।
५. श्री द्वारकाधीश जी – ये चतुर्हस्तरूप – तीन भुजाओं में शंख, चक्र और गदा लिये हुए हैं।
६. श्री गोकुलनाथ जी – ये एक भुजा से गोवर्धन पर्वत उठाये हुए, दूसरे में शंख लिये हुए और शेष दो से बाँसुरी बजाते हुए हैं।
७. श्री गोकुलचन्द्रमा जी – ये रास लीला के कृष्ण रूप हैं।
८. श्री मदनमोहन जी – ये बाँसुरी बजाकर गोपियों को आमंत्रित करते हुए हैं।
९. श्री बालकृष्ण जी – ये बाल कृष्णरूप में एक हाथ में मोदक लिए हुए हैं।

६. पुष्टिमार्ग के आचार्यों की बैठकें :-

वल्लभाचार्य ने अपनी यात्राओं में जहाँ श्रीमद् भागवत का प्रवचन किया था तथा जिन स्थानों क़ा विशेष महात्म्य बतलाया है वहाँ उनकी बैठकें बनी हुई हैं जो 'महाप्रभु जी की बैठक' कहलाती हैं। इन बैठकों की संख्या ८४ है, जो पूरे भारत देश में फैली हुई हैं।

वल्लभाचार्य की बैठकों की भाँति विट्ठलनाथ जी गुसाँई जी की भी २८ बैठकें पूरे भारत देश में विद्यमान हैं।

पुष्टि सम्प्रदाय में गिरिधरलाल जी की चार बैठकें, गोकुलनाथ जी की १३ बैठकें, हरिराय जी की ७ बैठकें, गोवर्धन नाथ की ३ बैठकें और दामोदरदास जी की ३ बैठकें हैं। इस तरह कुल १४८ बैठकें इस सम्प्रदाय में विद्यमान हैं। वल्लभ सम्प्रदाय में ये बैंठकें मंदिर–देवालयों की भाँति ही पवित्र और दर्शनीय मानी जाती हैं।

इस कलियुग में श्रीमद् भागवत् को सर्वोपरि ग्रंथ माना गया है। इसके आराध्यदेव परब्रह्म श्री कृष्ण हैं, जिनके अनुग्रह मात्र से हम इस संसार के प्रपंचों से मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं। इस काल में धार्मिक विधि–विधान और ज्ञान कर्म की नितांत निरपेक्षता बनी रहती है। इसी कारण वल्लभ ने सरल भक्तिमार्ग की स्थापना की, जो 'पुष्टिमार्ग' के नाम से जाना जाता है। इस मार्ग में सब जीव–वर्ण, जाति, देश–काल आदि सभी प्रकार के भेद भावों के बिना सर्वदा तथा सर्वथा उपादेय है। यही इस मार्ग की विशेषता है।

७. पुष्टिमार्ग का ललित कलाओं में योगदान :-

१. चित्रकला ::

१. चित्रकला का संक्षिप्त परिचय – मनुष्य ने अपने इस लोक और परलोक में सिद्धि प्राप्त करने के लिए सत्यम्, शिवम् और सुंदरम का सहारा लिया है। इस कारण वल्लभाचार्य ने भी अपने पुष्टिमार्ग में कला को उचित महत्व दिया है, जिससे पुष्टिमार्ग का मानव अपनी रागात्मक प्रवृत्ति और सौन्दर्यपरक दृष्टि का सहज विकास 'श्रीनाथजी' की सेवा के द्वारा कर सके। पुष्टिमार्ग में वैष्णवजन स्वच्छता, पवित्रता और तन्मयता से अपने आराध्य श्री नाथ जी की सेवा करते हैं उनका दर्शन करते हैं, और प्रभु को आरोगाया प्रसाद पाकर अपने आत्मा का कल्याण करते हैं। पुष्टिमार्ग के प्रचार–प्रसार में चित्रकला का बड़ा महत्व है। सिर्फ इतना ही नहीं, भारतीय प्राचीन ग्रंथ 'विष्णुधर्मोत्तर पुराण' में भी उल्लेख किया गया है कि कला धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्रदायनी है।[२२]

रंग और रेखाओं के योग से छाया लोकमय संसार की रचना करना ही चित्रकला है।[२३] पुष्टिमार्ग में हाथ कलम के बने चित्रों को ही सेवा के योग्य समझा जाता है। इन्हीं चित्रों को वैष्णव अपने गुरु के द्वार पुष्ट कराकर, भगवद् सेवा का आरम्भ करता है। वैष्णव प्रातःकाल उठकर और रात्रि सोने से पहले अपने इष्टदेव

और गुरु देव को वन्दन करता है। इसी कारण वैष्णवों के घरों में श्रीनाथजी, श्री यमुनाजी और श्री वल्लभाचार्य का संयुक्त चित्र अंकित होता है। इसके अलावा अपने दीक्षित गुरु का चित्र तथा गुरु के आराध्य स्वरूप का चित्र भी अंकित होता है।

पुष्टिमार्ग की चित्रकला का उद्गम स्थान ब्रज देश है, जहाँ श्री कृष्ण भगवान् की बाल लीलाओं का सजीव वर्णन मिलता है। पुष्टिमार्ग में ब्रजाधिपति भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा की जाती है। यह स्वरूप ग्यारह वर्ष बावन दिन तक का माना जाता है। अतः पुष्टिमार्ग की चित्र कला में ब्रज में बसे गिरिराज–गोवर्धन पर्वत, यमुना नदी, ब्रज के पेड़–पौधों, वन–उपवन, कुँज–निकुँज, पशु–पक्षी, गोप–ग्वाल, ब्रजांगनाएँ–गोपियाँ आदि का जीवन्त वर्णन प्रस्तुत होता है।

मुसलमानी आक्रमण की गम्भीर परिस्थिति में भगवान् श्रीनाथ जी प्रभु को ब्रज से निकाल कर राजस्थान में मेवाड़ में ले जाकर प्रतिष्ठित किया गया था। इस कारण पुष्टिमार्ग की चित्रकला में ब्रज संस्कृति के साथ–साथ राजपूताना शैली और मेवाड़ की कला का भी सुन्दर समन्वय देखने को मिलता है।

पुष्टिमार्ग की चित्रकला की प्रगति में गोस्वामी बालकों का भी समय–समय पर अपूर्व योगदान रहा है। इसका उत्तम उदाहरण है गुसाँई विट्ठलनाथ जी के हाथ का बना भगवान् बालकृष्ण का चित्र। पुष्टिमार्गीय चित्रों की विषयवस्तु सीमित है। इनके सभी चित्रों में श्रीनाथ जी की छबियों की प्रधानता रहती है। इसके अलावा ऋतुओं और पर्वों, उत्सवों के अनुरूप वस्त्राभूषण और शृंगार होते हैं। पुष्टिमार्ग में वर्षभर के अलग–अलग वस्त्राभूषण और शृंगार से सज्ज श्रीनाथ जी प्रभु के चित्र उपलब्ध होते हैं। पुष्टिमार्ग में श्री यमुना जी को श्री कृष्ण की चतुर्थ प्रिया माना गया है। श्री यमुना जी का आधि भौतिक स्वरूप नदी–जलप्रवाह के रूप में चित्रित किया जाता है और आधिदैविक रूप में निकुंज में दैवी स्वरूप में बिराजमान श्री यमुना जी का स्वरूप भी देखने को मिलता है जो मानुषी रूप में व्यक्ति चित्र होता है। इसके अलावा गिरिराज–गोवर्धन का भी बड़ा महत्व है। इसके साथ ही साथ

श्री कृष्ण की ब्रज लीलाओं के चित्र अंकित मिलते हैं जैसे–माखन चोरी, दही बिलावन, गोचारण, कालिया नाग दमन, चीरहरण, दान–लीला, गोवर्धन धारण, गोवर्धन पूजा, पूतना उद्धार, रास लीला, राधा कृष्ण सखियों के साथ आदि और कई लीलाओं के चित्र बनाए जाते हैं। इसमें महाप्रभु वल्लभ और श्रीनाथ जी प्रभु के मिलन का चित्र अत्यन्त लोकप्रिय है। इनके सिवाय उत्सवों–त्यौहारों के अन्नकूट, छप्पनभोग, कुंजवारा आदि के चित्र भी बनवाये जाते हैं। इन त्यौहारों में होली के चित्र विशेष लोकप्रिय हैं। इन सब चित्रों के साथ–साथ प्रकृति का सजीव चित्रण भी हमें देखने को मिलता है–वन–उपवन, हरित आभामय भूमि, पशु–पक्षी, गुच्छ–श्याम सलिल यमुना में खिले कमल, झूला, नाचता मयूर, गायें, कल्पवृक्ष, हाथी–घोड़े, नील गगन में चाँद–तारे आदि। व्यक्ति चित्र भी पुष्टिमार्ग में इतने ही बनाए जाते हैं जिनमें महाप्रभु वल्लभाचार्य, गुसाँई विट्ठलनाथजी, गोकुलनाथ जी, हरिराय जी तथा अष्टछाप के चित्र बनाए जाते हैं।

२. **पुष्टिमार्गीय चित्रकला के प्रकार –** पुष्टिमार्गीय चित्रकला मुख्य रूप से दो प्रकार की है–पिछवाई कला तथा भित्ति चित्रकला।

पुष्टिमार्ग की पिछवाई कला –

श्रीनाथ जी प्रभु की (मूर्ति) स्वरूप के पीछे टांगे जाने वाले कपड़े को पिछवाई कहते हैं। यह कपड़ा सादा, मखमल का तथा रेशम का होता है। इस कपड़े पर सुन्दर चित्रकाम किया जाता है तथा आज कल तो भरतकाम जैसे, सोने–चांदी की जरी का काम, बहुमूल्य रत्न जड़ित काम, सितारा–गोटा–किनारी का काम आदि देखने को मिलता है। इन पिछवाईयों में आगे वर्णित सभी चित्र मिलते हैं जो समय, ऋतु व उत्सव के अनुरूप होते हैं। नाथद्वारा की चित्रकला की पिछवाईयाँ आज भी विश्व विख्यात हैं।

पुष्टिमार्गीय भित्ति चित्रावलियाँ–

प्राचीन काल में विवाह के अवसर पर महिलाएँ घर की सजावट हेतु घर के अन्दर–बाहर भीत पर और आंगन में चित्र बनाया करती थीं। कालान्तर में इसका

विकसित रूप पुष्टिमार्ग में देखने को मिलता है। पुष्टिमार्ग की चित्रकला में मंदिर में बने भित्ति चित्रों का महत्वपूर्ण स्थान है। मंदिर में दोनों ओर के दरवाजें पर द्वार रक्षक खड़े बनाए जाते हैं तथा हाथी, घोड़े और एक ओर शुभ आरती लिए ब्रज कन्या है तो दूसरी ओर हाथ में मंगल कलश लिए ब्रज कन्या का चित्र भी देखने को मिलता है। इसके अलावा नृत्य करता मयूर, सिंह, सात सुँढवाला ऐरावत हाथी, कमल, विमानों से पुष्प वृष्टि करते देवता, केलवृक्ष, नृत्य करती ब्रजांगनाएँ, सफेद कबूतरों का जोड़ा, स्वर किन्नरियाँ और वाद्य बजाते गंघर्व, माखन चोरी, दान लीला, कालिया नाग दमन, सुन्दर झाड़ व पेड़–पौंधें, बेल–बूँटें आदि कई चित्र देखने को मिलते हैं। इसका उत्तम उदाहरण नाथद्वारा का श्रीनाथ जी मंदिर हैं। इसके अलावा इस सम्प्रदाय के सभी मंदिरों में हमें भित्ति चित्र देखने को मिलते हैं।

पिछवाई कला और भित्ति चित्रकला के अलावा रंगोली का भी आयोजन उत्सवों त्यौहारों पर किया जाता है। ये रंगोली आंगन में तथा मंदिर परिसर में बनाई जाती है। इसके अलावा आरती की थाली को भी रंगोली द्वारा सजाया जाता है। इसके सिवाय आजकल श्रीमद् भागवत् के श्लोकों तथा अष्टछाप के पदों के हस्त चित्र भी उपलब्ध हैं। पुष्टिमार्ग में चित्रकला का उपयोग एक दैनिक क्रम–सा हो गया है जो अन्यत्र देखने को नहीं मिलता। आजकल तो नाथद्वारा में पुष्टिमार्गीय कलम के केलैण्डर भी उपलब्ध हैं। इसके अलावा हाथी दाँत, लकड़ी–धातु, आरसपान की बनी चीजों पर भी बारीक चित्रकाम देखने को मिलता हैं। नाथद्वारा आज पुष्टिमार्गीय चित्रकला का प्रमुख केन्द्र है, जहाँ हमें सभी प्रकार का चित्रकाम देखने को मिलता हैं। इसीलिए सूरदास जी ने कहा है –

'चित्र सराहत मुर–मुर चित्तवत गोपी अधिक सयानी।
ग्लालिनी आप तन देख, मेरे लाल तन देखरी।
भीत जो होय तो, चित्र अवरेख री।'

भक्त जन चाहे स्थान पर न तो मंदिर बनवा सकता है और न मूर्ति ही स्थापित कर सकता है। अतः इस मत के नियमानुसार हाथ से बने अपने आराध्य देव के चित्र की स्थापना कर मन में शान्ति का अनुभव करता है। यही सोच कर के वल्लभाचार्य ने इस सम्प्रदाय में हाथ के बने चित्र की पुष्टि करके सेवा करने की स्वीकृति प्रदान कर चित्र कला के प्रति अनन्य प्रेम का परिचय दिया है। यही परम्परा दिन प्रतिदिन विकसित होती जा रही है। मुख्य रूप से पुष्टिमार्ग में बने चित्रों का वर्गीकरण इस प्रकार हो सकता है–

१. पुष्टिमार्ग के सेव्य स्वरूपों के विविध शृंगार युक्त चित्र।
२. प्रमुख उत्सवों व त्यौहारों पर आधारित चित्र।
३. श्री कृष्ण जन्म से गोकुल आगमन तक की अनेक लीलाओं पर आधारित चित्र।
४. श्री कृष्ण की ११ वर्ष बावन दिन तक की ब्रज की बाल लीलाओं पर आधारित चित्र।
५. वल्लभ सम्प्रदाय के प्रधान भक्तों और गोस्वामी बालकों के व्यक्ति चित्र।
६. अनेक अन्य देवी–देवताओं की लीलाओं के चित्र।
७. सामाजिक घरेलू व लोक भावना पर आधारित चित्र जैसे–गोवर्धन पूजा, यशोदा मैया द्वारा माखन बिलोना, गोवर्धन धारण करना आदि के चित्र।
८. इनके अलावा चौवल पर जय श्री कृष्ण, श्री कृष्ण शरणं ममः आदि आदर्श भावना प्रधान वाक्य लिखना व चित्रित भी करना। पीपल के पत्तें पर चित्र बनाना, लड़की, हाथी दाँत, आरसपान आदि पर चित्र बनाना।

३. नाथद्वारा के प्रमुख चित्रकार–

नाथद्वारा में जन्में गोस्वामी तिलकायत गोवर्धनलालजी के काल को नाथद्वारा के कला क्षेत्र का स्वर्ण युग माना जाता है। इन्होंने अपनी सूझ–बूझ व सहयोग से नाथद्वारीय चित्रकला को एक नया आयाम दिया है। इनके कार्यकाल में बनी चित्र कृतियाँ देखनेवाले लोगों पर गहरी छाप छोड़ती है। नाथद्वारा की

चित्रकला को विश्व स्तर पर पहुँचानेवाले कुछ चित्रकारों के नाम इस प्रकार हैं– रामचन्द्र बाबा, श्री नारायण, उदयराम जी सीलक, एकलिंग दास, खेमराज पालेचा, हरदेव जी सीलक, देव कृष्ण, कासीराम शर्मा, हीरालाल सीलक, चिमनलाल, खूबीराम शर्मा, देवीलाल, प्रेमचन्द्र, प्रेम नरेन्द्र, तुलसीराम बुड़ेतिया, भूरालाल शर्मा, चुन्नीलाल, शंकरलाल गगेरिया, गंगाराम, लक्ष्मीलाल नंदलाल आदि अनेक कला तपस्वी कलाकारों के नाम उल्लेखनीय हैं।

इनके अतिरिक्त वर्तमान में पुरुषोत्तम रामलाल पालेचा, द्वारकालाल जाँगिड़, चिमनलाल हीरालाल सीलक, भंवरलाल गिरधारी लाल शर्मा, घनश्याम भूरालाल शर्मा, चिरंजीवलाल शर्मा, जमनादास, विट्ठलदास लक्ष्मीलाल, रेवाशंकर लक्ष्मीलाल सिलक, रघुनाथ अम्बालाल शर्मा, माँगीलाल शर्मा, यशवन्त एम. जाँगिड़, देवेन्द्र कुमार आदि कुछ ऐसे चित्रकार हैं जो वर्तमान में कला साधना को नये आयाम प्रदान कर रहे हैं।

४. चित्रकारी के साधन–सामग्री –

ब्रश–तूलिका : ये ब्रश या तूलिका घोड़े, बकरी, गिलहरी व सूअर के बालों से बनाई जाती है। पहले सभी चित्रकार स्वयं तूलिका बनाया करते थे, किन्तु अब ये ब्रश के रूप में बाज़ार से तैयार मिल जाती है।

रंग : पहले प्राकृतिक वस्तु से बने रंग काम में आते थे, जैसे–पीली मिट्टी से पीले रंग का बनना, लाल पत्थर को पीस कर लाल रंग तैयार करना आदि पर अब तो कई कम्पनियों के रंग तैयार मिल जाते हैं। पहले रंगों को सुरक्षित रखने के लिए नारियल के खोल से बनी कटोरियों से काम लिया जाता था जिसका स्थान आज प्लास्टीक डिश ने ले लिया है। वस्तुतः समय के साथ–साथ पुष्टिमार्गीय चित्रकला में भी कई बदलाव आए हैं किन्तु अभी भी कुछ विशेषताएँ यथावत हैं–

१. पुष्टिमार्गीय चित्रकला आध्यात्मिक आधार पर स्थित है। अतः आत्मा को शांति और आनन्द प्रदान करती है।

२. इन चित्रों का मुख्य विषय आज भी ब्रज संस्कृति और श्री कृष्णलीला है। इनके अलावा अष्टछाप के पद, श्रीमद् भागवत् पुराण और अन्य वैष्णव पुराण भी अब इनका हिस्सा बन गए हैं।
३. यह चित्रकला आज भी ब्रज, मेवाड़ और राजस्थान की समन्वित चित्र शैली पर आधारित है।
४. इनमें आज भी प्राकृतिक व देशी रंगों का प्रयोग होता है, साथ ही रासायनिक रंगों से भी काम किया जाता है।
५. इस चित्रकला में परम्परा तो यथावत् है, साथ ही नवीन प्रयोगों को भी स्थान दिया गया है – जैसे श्रीमद् भागवत् के श्लोक तथा अष्टछाप के पद।
६. वैसे तो पुष्टिमार्गीय चित्रकला भगवत सेवा के उद्देश्य से भावना के साथ की जाती है, किन्तु अब व्यावसायिक झलक भी देखने को मिलती है।

२. सांझी कला ::

१. सांझी कला का परिचय–

पुष्टिमार्ग के मंदिरों में दीपावली से पूर्व आश्विन मास में श्राद्ध पक्ष में पूरे सोलह श्राद्धों में प्रतिदिन सांझी मांड़ी जाती है, जो पूर्णिमा से लेकर अमावस्या तक प्रतिदिन संध्या के समय की जाती है। इन सांझीयों में हमें मुख्यतः ब्रज–संस्कृति की झलक मिलती है। इनमें ब्रज चौरासी कोस, राधा–कृष्ण की लीलाएँ आदि का मूर्त रूप में वर्णन होता है।

२. सांझी बनाने की रीत–

सांझी बनाने के लिए पहले भूमि तैयार की जाती है जो गोबर से लीप कर तैयार की जाती है। फिर उस पर कोट तैयार किया जाता है। इस कोट को केले के पत्ते, केले के तने की अन्तर छाल, विभिन्न रंगों के कागज़, रंग–बिरंगें फूल आदि की सामग्री से तैयार किया जाता है। उपरोक्त सामग्री का उपयोग कर कुशल कारीगर इसे संपूर्ण रूप से तैयार करते हैं। इस सामग्री से कारीगर अलग–अलग

आकृतियाँ बनाते हैं; जो सफेद कपड़े पर या मोटे कागज पर सजाई जाती हैं। फिर उस पर पानी भी छिड़का जाता है ताकि हवा के झोंके से वे खराब ना हो जाएँ। इस कोट में गिरिराज पर्वत, यमुना नदी, नन्द–यशोदा, गोपी–ग्वाल, ब्रज के सरोवर–जलाशय, कुँज–उपवन, पशु–पक्षी, सिपाही, शृंगारित महिलाएँ, संतरी, छड़ीदार आदि आकृतियाँ बनाई जाती हैं। साथ ही किनारे पर बेल–बूटे, पेड़–पौधें भी इनकी शोभा में वृद्धि हेतु बनाए जाते हैं।

३. पुष्टिमार्ग में सांझी का महत्व–

हमारे शास्त्रों में पृथ्वी परिक्रमा का फल सविशेष कहा गया है। वल्लभाचार्य ने भी तीन बार पृथ्वी परिक्रमा की थी। पुष्टिमार्ग में सांझी की परिक्रमा का फल भी पृथ्वी परिक्रमा के जितना माना गया है जो मुख्यतः शारीरिक रूप से कमजोर वैष्णवों के लिए अधिक महत्वपूर्ण है। वे इस कोट (सांझी) की परिक्रमा द्वारा ब्रज चौरासी कोस की परिक्रमा का फल प्राप्त करते हैं।

इस कोट में बनी आकृतियों की वैष्णव भक्त माला पधराते, भोग आरोगाते, आरती भी उतारते हैं। जब सांझी मण्डती है, कोट सजते हैं तब कीर्तनकार कीर्तनगान करते हैं और ब्रज राज को प्रसन्न करते हैं।

मंदिरों में सांझी माण्डने का कार्य धार्मिक भावों के रूप में किया जाता है तो घरों में सांझी भावनात्मक सुख और लोक संस्कृति–परम्परा के रूप में बनाई जाती है। घरों में सांझी माण्डने का कार्य कुंवारिकाएँ करती हैं, इस कार्य में उनका सहयोग सधवा (सुहागन) नारियाँ देती हैं।

ये कुंवारिकाएँ गोबर से भूमि तैयार कर उस पर चाँद–सूरज, तारे, सास–बहू का बिछौना, चोपड़, राजा–रानी, पशु–पक्षी आदि आकृतियाँ बनाती है। सांझी संपूर्ण मण्ड जाने के पश्चात् ये कुंवारिकाएँ गीत गाती हैं, आरती उतारती हैं और भोग चढ़ाती हैं। फिर दूसरे दिन सुबह इस सांझी को पानी में विसर्जित किया जाता है। वर्तमान में सांझी माण्डने का कार्य भी आधुनिक होता जा रहा है। अब

चमकीले रंगीन कागज व प्लास्टीक तथा थर्मोकोल व फेविकोल का उपयोग किया जाता है।

इस प्रकार देखें तो आज भी यह सांझी कला मंदिरों और घरों में बसने के साथ हमारी धार्मिक आस्था और लोक संस्कृति को उजागर करने में अपना सम्पूर्ण योगदान दे रही है।

३. छठी अंकन ::

१. छठी पूजा का परिचय–

हमारे यहाँ छठी पूजा की प्रथा बहुत पुरानी है। जब किसी बालक का जन्म होता है तो जन्म के छठे दिन, छठ पूजा की जाती है। ऐसी लोक मान्यता है कि छठ के दिन भाग्य विधाता आकर उस बालक का भाग्य लिखते हैं।

२. पुष्टिमार्ग में छठी का उत्सव व विधि (या रीत)–

पुष्टिमार्गीय मंदिरों में श्री कृष्ण के जन्म दिन के एक दिन पहले छठी का उत्सव मनाया जाता है। छठी के पूजन में कोरा कागज, कलम, कुमकुम और दिया रखा जाता है। ये पूजा मंदिर हो या घर, केवल महिलाओं द्वारा ही की जाती है।

इसमें पहले पंचकोणीय आकृति बनाई जाती है, उसे काले रंग से पोता जाता है फिर उस पर सफेद या पीले रंग से अन्य आकृतियाँ बनाई जाती हैं जैसे– नन्द यशोदा का पालना झुलाना, नन्द महोत्सव, रास आदि। अब इसमें भी काले, सफेद और पीले रंग के अलावा गुलाबी, आसमानी, हरा, नारंगी आदि रंगों का प्रयोग किया जाता है।

इस अवसर पर कीर्तनकार कीर्तन गान करते हैं।

४. पुष्प कला ::

१. पुष्पकला का आरम्भिक परिचय–

हमारे यहाँ प्राचीन काल से अपने आराध्य अथवा इष्ट देव की पूजा व उपासना में हम पुष्पों का उपयोग अनिवार्य रूप से करते रहे हैं। इसके अलावा मंदिरों, देवालयों, महलों आदि को भी उत्सवों पर फूलों से सजाया जाता है। यहीं से हम पुष्प कला का विस्तार होता हुआ देखते हैं।

२. पुष्टिमार्ग में पुष्पकला–

पुष्प कला के महत्व को स्वीकार करते हुए पुष्टिमर्गीय मंदिरों में 'फूलघर' नाम का विभाग बनाया गया है। फूलघर के प्रधान को 'फूलघरिया' कहा जाता है। वैष्णव जन प्रतिदिन फूलघर में अपनी सेवा देते हैं। फूलघरिया प्रतिदिन प्रातः मंगला के समय बड़े मुखिया जी से आज्ञा लेकर श्रृंगार के अनुकूल फूलों की मालाएँ व आभूषण तैयार करवाता हैं।

श्रीनाथ जी के सभी प्रकार के श्रृंगारों में फूलों की माला अनिवार्य रूप से पधराई जाती है। ये मालाएँ कई प्रकार की हैं–छेड़ा की माला, छोटी माला, मध्य की माला, भारी श्रृंगार की बड़ी माला (जो चरणारविन्द तक की होती हैं) इनके अलावा गोवर्धन माला व वनमाला भी होती है। मालाएँ एकहरी, दोहरी, तिहरी, चौहरी एवं गुच्छेदार बनाई जाती है। मालाएँ घारीदार, मनकादार आदि प्रकार की भी बनाई जाती है। मालाओं के साथ गजरे, वेणियाँ भी कलात्मक रूप से बनाए जाते हैं।

माला बनाने में मौसम के अनुकूल जो भी फूल अधिक प्राप्त होते हैं उनका विशेष उपयोग किया जाता है। ग्रीष्म ऋतु में चमेली, मोगरा, गुलाब, जूही, चम्पा, मोलश्री, कोयल, मोगरे की कली, जूही की कली, पत्ती की कली आदि अधिक मिलते हैं। शीत ऋतु में गुलाब (लाल, गुलाबी, पीले आदि), कमल, कदम्ब आदि फूल मिलते हैं। श्रावण मास में गैंदा, हजारा, केवड़ा, रायबेल, पारिजात आदि फूल मिलते हैं। श्रावण मास में होने वाले हिण्डोला उत्सव में फूलों का काफी अधिक मात्रा में उपयोग किया जाता है। इन मालाओं के बीच थाग बनाया जाता है जो माला को अधिक सुन्दर बना देता है। ग्रीष्म ऋतु में मुख्य रूप से फूलों से श्रीनाथ

जी के लिए आभूषण बनाये जाते हैं। मुख्यतः कुँज एकादशी के दिन श्रीजी मुकुट, टोपी, काछनी, आडबन्द, परदनी, नेपूर, डोडा, पाँची, बाजूबन्द, हस्तफूल, चरण फूल, कर्ण फूल, हांस, पाग, हुली, कटिमेखला आदि कई प्रकार के फूलों के आभूषण पधराएँ जाते हैं। जो सम्पूर्ण नख–शिख श्रृंगार होता है।

वस्त्राभूषणों व मालाओं के अलावा बंगला, सज्ज मण्डली, पलना आदि भी फूलों से बनाए जाते थे। श्राद्ध में, सांझी उत्सव में भी फूलों से सांझी बनाई जाती है तथा फूलों से चौक भी सजाया जाता है। कलियों और पत्तों से पशु–पक्षी, बेल–बूट्टें, महल–छतरी–झरोखा आदि भी बनाए जाते हैं।

५. पाक कला ::

पुष्टिमार्गीय पाक कला का विस्तृत विवरण–

पुष्टिमार्गीय सम्प्रदाय में श्रृंगार और राग के बाद भोग का स्थान आता है। पुष्टिमार्गीय मंदिरों में प्रतिदिन हजारों प्रकार की सामग्रियाँ श्रीनाथ जी के भोग के लिए बनाई जाती हैं। ये सारी सामग्री श्रीनाथ जी को भोग लगने के पश्चात् 'प्रसादी भण्डार' में पहुँचाई जाती है, जहाँ से ये सामग्री मंदिर के सेवकों में उनके पदानुसार वितरित कर दी जाती है। मंदिर के सेवक इस प्रसाद को अपने पालन पोषण के लिए यात्रिकों को कम व्यय में दे देते हैं।

ये सामग्रियाँ दो प्रकार की होती हैं – सखड़ी प्रसाद और अनसखड़ी प्रसाद। सखड़ी प्रसाद रोज प्रातः राजभोग तथा संध्या समय शयन के पश्चात् निकलता है। सखड़ी प्रसाद में चावल, रोटी, जीरापूरी, दालबाटी, पकौड़े, हरी सब्जियाँ, कई प्रकार की दालें, रायता, पापड़, बड़ी, अचार, मुरब्बे, सीरा, चूरमा आदि कई और सामंग्री का भोग श्रीनाथ जी को लगाया जाता है। संध्या के समय में चावल, दाल, कढ़ी, कुछ सब्जियाँ आदि का भोग श्री नाथ जी को लगाया जाता है।

अनसखड़ी प्रसाद का श्री नाथ जी को आठों दर्शनों में भोग लगाया जाता है जो हर दर्शन के बाद निकलता है। अनसखड़ी प्रसाद में दूध और घी से बनी सामग्रियाँ आती हैंजो कई दिनों तक ताजा रहती हैं जैसे–मिठाइयाँ –जलेबी, मोहनथाल, पेड़े, लड्डु, घेबर, ठौर, खाजा, आम्ररस, सीरा (हलवा), सूतरफेणी, बरफी, मेसूर, बूंदी आदि; घी में तल कर बनाई गई सब्जियाँ[२४] रतालु, आलू, सूरन, भिंडी आदि, घी में ही बनाए गए कठोर–मूँग, मठ, चने की दाल, वाल की दाल, चने (हरे) आदि; दूध से बनी चीजें–मावा, खीर, दूधपाक, श्रीखण्ड आदि।

इन सबके अलावा कई तरह के अचार–मुरब्बे, चटनियाँ, नमकीन, पापड़, बड़ियाँ आदि भी बनाएँ जाते हैं। अनसखड़ी का अधिक प्रसाद हमें अन्नकूट, छप्पन भोग में देखने को मिलता है।

इन सभी सामग्रियों को बनाने के लिए मैदा, बेसन, शक्कर, घी आदि पदार्थ तथा बादाम, पिस्ते, काजू, द्राक्ष, अंजीर, खसखस आदि मेवे साथ ही केसर, बरास, इलायची, कस्तूरी आदि सुगन्धित पदार्थ का भी प्रचुर मात्रा में मंदिर में आयात किया जाता है। मुख्यतः निधि स्वरूप मंदिरों की अपनी गौ शालाएँ हैं तो दूध तो वहीं से मिल जाता है।

भोग के पश्चात् श्रीनाथ जी को पान आरोगाया जाता है। पान बनाने का काम 'पानघर' का प्रधान करता है। इस पान में गुलाब जल से सुगन्धित कत्था, चूना तथा सुगन्धित सुपारी, इलायची, लोग आदि डाली जाती है।

निधि मंदिरों में प्रतिदिन कुछ किलो सामग्री का भोग नियमित श्रीनाथ जी को आरोगाया जाता है। इतनी सामग्री तैयार करना भगवान श्रीनाथ जी की कृपा के बिना सम्भव नहीं हो सकता है।

इस प्रकार पुष्टिमार्ग में हमें कई कलाएँ देखने को मिलती हैं–चित्रकला, संगीत कला, सांझी कला, छठी अंकन, पुष्प कला, पाक कला, कढाई–बुनाई की कला आदि। अतः हम कह सकते हैं कि पुष्टिमार्ग अनेक कलाओं का प्रधान केन्द्र–सा प्रतीत होता है।

८. पुष्टिमार्ग के पर्वोत्सव :-

महाप्रभु वल्लभाचार्य द्वारा स्थापित तथा गुसाँई विट्ठलनाथ जी द्वारा पल्लवित पुष्टिमार्ग की सेवा प्रणाली का प्रारम्भ ब्रज के गिरिराज गोवर्धन पर्वत पर बिराजमान 'श्रीनाथ जी' के मंदिर से होता है, जो आज सदियों बाद भी एक समान रूप से पूरे भारत वर्ष में प्रचलित है।

आचार्य वल्लभ ने पुष्टिमार्ग में लोक–जीवन से संबंधित उत्सवों–त्यौहारों को शामिल किया है ताकि सामान्य मनुष्य भी इन उत्सवों–त्यौहारों का आनन्द लेने के साथ–साथ भगवत् लीला का रस–पान भी कर सकें।

१. नित्योत्सव वर्षोत्सव ::

पुष्टिमार्ग में पर्वोत्सव व उत्सव दो प्रकार से मनाए जाते हैं– 'नित्योत्सव तथा वर्षोत्सव'। नित्योत्सव में वर्ष के तीन सौं पैसठ दिनों में होने वाले प्रतिदिन के उत्सवों को शामिल किया जाता है, जो ऋतु के अनुरूप होते हैं तथा उस (महीने) माह की तिथियों के अनुरूप भी होते हैं। वर्षोत्सव में पूरे वर्ष भर में होने वाले मुख्य त्यौहार होते हैं। जो लोक–जीवन से सम्बन्धित होते हैं, जैसे–होली, दीपावली, दशहरा आदि। वर्षोत्सव में श्री कृष्ण की बाल लीलाओं और लोक मेलों, लोक उत्सवों को मुख्य माना गया हैं। ये उत्सव भारत वर्ष के हर घर में मनाएँ जाते हैं।

संक्षेप में पुष्टिमार्ग के मुख्य उत्सवः

१. इनमें सबसे पहले पुष्टिमार्ग का स्थापना दिन आता है जो पवित्रा एकादशी को मनाया जाता है।
२. बाद में महाप्रभु वल्लभाचार्य जी का प्राकटोत्सव तथा गुसाँई विट्ठलनाथ जी का प्राकटोत्सव साथ ही इनके वंशज गोस्वामी बालकों के प्राकटोत्सव भी मनाये जाते हैं।
३. साथ ही वर्ष भर की चौबीस एकादशियाँ भी उत्सवों के रूप में मनायी जाती हैं।

२. वर्षभर के मुख्य उत्सवों की सूची ::

१. **पवित्रा एकादशी :** पुष्टिमार्ग प्राकट्य दिन (श्रावण सुदी एकादशी)

इस दिन श्री वल्लभाचार्य ने मध्यरात्रि को श्री ठाकोरजी श्रीनाथ जी के दर्शन कर उनकी आज्ञानुसार ब्रह्म सम्बन्ध द्वारा दैवी जीवों के उद्धार का संकल्प किया था तथा श्री नाथ जी को पवित्रा अर्पण किया था।

२. **पवित्रा बारसः** (श्रावण सुदी द्वादशी)

इस दिन वैष्णव जन गुरु को पवित्रा पधराते हैं तथा साथ ही श्री नाथ जी को भी पवित्रा पधराते हैं।

३. **रक्षाबंधन :** (श्रावण सुदी पूर्णिमा)

इस दिन सुभद्रा जी ने श्री कृष्ण को और बलराम को रक्षा बाँधी थी इस कारण भी उत्सव मनाया जाता है।

४. **छट्ठी उत्सव :** (श्रावण/भादों वदी सप्तमी)

ये छठी पूजन बालक के जन्म के छठे दिन किया जाता है। इसमें कोरा कागज, लाल कपड़ा, कलम, सिंदूर तथा दीप बालक के पास रखा जाता है। श्री नाथ जी का छट्ठी पूजन भी मंदिरों में किया जाता है।

५. **जन्माष्टमी :** (श्रावण/भादों वदी अष्टमी)

श्री कृष्ण प्रभु के प्राकट्य का दिन बड़ी ही धूम–धाम से मनाया जाता है।

६. **नन्द महोत्सव :** (श्रावण/भादों वदी नवमी)

नन्द महोत्सव के दिन प्रभु श्री नाथ जी को पालना झुलाया जाता है।

७. **श्री चन्द्रावली जी का उत्सव :** (भादों सुदी पंचमी)

श्री चन्द्रावली जी मुख्य सखी हैं तथा श्री गुसाँई विट्ठलनाथ जी को चन्द्रावली जी का स्वरूप माना जाता है।

८. **श्री ललिता जी का उत्सव :** (भादों सुदी षष्ठी)

अष्ट सखा के कृष्णदास अधिकारी ललिता जी का स्वरूप है।

९. राधाष्टमी : (भादों सुदी अष्टमी)

आज का दिन श्री राधा जी का जन्मोत्सव मनाया जाता है। मंदिरों में श्री नाथ जी के पास केसरी रंग की साड़ी–चोली श्री राधा जी के भाव से पधराई जाती है।

१०. दान एकादशी : (भादों सुदी एकादशी)

आज के दिन से दानलीला का मनोरथ प्रारम्भ होता है जो बीस दिन चलता है। दानलीला में प्रभु ने ब्रज भक्तों से दही (गोरस) का दान मांगा था। आज से ही ब्रज यात्रा का आरम्भ होता है।

११. वामन जयंती : (भादों सुदी द्वादशी)

आज ही के दिन प्रभु श्री विष्णु ने बटुक (वामन) का वेष घर कर पृथ्वी पर राजा बलि के पास आए थे। ये स्वरूप श्री विष्णु के मुख्य अवतारों में से एक है। यद्यपि इस दिन को पुष्टिमार्गीय मंदिरों में उत्सव मनाया जाता है।

१२. साँझी उत्सव : (भादों सुदी पूर्णिमा से आश्विन की अमावस्या तक)

साँझी का उत्सव पन्द्रह दिन लगातार चलता है ओर कोट की विशेष आरती के साथ समाप्त होता है। साँझी श्राद्ध पक्ष के दिन में भरी जाती है। इसका विस्तृत वर्णन सांझी कला विभाग में देखिए।

१३. नवरात्रि आरम्भ : (आश्विन सुदी प्रतिपदा से नवमी तक)

पुष्टिमार्गीय मंदिरों में भी आद्य–शक्ति नवदुर्गा की आराधना का पर्व नवरात्रि पूर्ण श्रद्धा से मनाया जाता है। इन नौ दिनों में ब्रज भक्त अपनी यथाशक्ति तन–मन–धन से प्रभु श्रीनाथ जी सेवा करते हैं और भोग पधराते हैं।

१४. दशहरा: (आश्विन सुदी दशमी)

विजयादशमी के दिन श्री स्वामिनी जी ने प्रभु पर विजय प्राप्त की थी इस भावना से मंदिरों में जवारा पधराये जाते हैं। साथ ही नवरात्रि की नवधा भक्ति तथा दशमी प्रेम लक्षणा भक्ति के भाव से भी दशहरा का उत्सव मनाया जाता हैं तथा रामावतार के रूप में भी यह उत्सव मनाया जाता है।

१५. शरद पूर्णिमा : (आश्विन सुदी पूर्णिमा)

आज के पावन दिन ही श्री कृष्ण प्रभु ने गोपियों के साथ महारास किया था। इसी महारास के माध्यम से गोपियों के विशुद्ध प्रेम को देखा जाता है। इनमें श्री स्वामिनी जी का स्थान सबसे ऊँचा है वे प्रभु की अहलादिनी शक्ति हैं। श्रीमद् भागवत् में इस महारास का वर्णन पाँच सर्ग में किया गया है जिसे रास पंचाध्यायी कहा जाता है।

१६. धनतेरस : (आश्विन वदी तेरस–कार्तिक वदी तेरस)

इस दिन श्री राधा ने प्रभु को सर्वस्व मान कर धन रूप में प्राप्त किया था।

१७. रूप चतुर्दशी (आश्विन बदी चतुर्दशी – कार्तिक बदी चतुर्दशी)

१८. दिपावली–हटरी उत्सव (आश्विन वदी अमावस्या–कार्तिक वदी अमावस्या)

धन तेरस के दिन से हटरी के विशेष दर्शन होते हैं जो दिपावली तक चलते हैं। दीप प्रज्वलित किए जाते हैं। मंदिरों को भी असंख्य दिपों से सजाया जाता है।

१९. गोवर्धन पूजा – अन्नकूटोत्सव : (कार्तिक सुदी प्रतिपदा)

यह उत्सव श्री कृष्ण द्वारा की गई इन्द्र–यज्ञ–भंग पूजा तथा गोवर्धन धारण लीला से संबन्धित है। आज के दिन पुष्टिमार्गीय मंदिरों में प्रातः गोवर्धन पूजा होती है और शाम को अन्नकूट के दर्शन होते हैं।

२०. भाई द्वीज–यम द्वितीया : (कार्तिक सुदी द्विज)

आज के दिन जो भी वैष्णव यमुना जल में स्नान करते हैं उन्हें यमलोक के द्वार नहीं जाना पड़ता तथा आज के दिन भाई–बहन के घर जाते हैं और भोजन करते हैं तथा इस प्रकार यह दिन भाईद्वीज के रूप में मनाया जाता है।

२१. गोपाष्टमी : (कार्तिक सुदी अष्टमी)

आज का दिन गौ पूजा का दिन है। आज ही के दिन श्री कृष्ण भगवान पहली बार गौ–चारण हेतु वन में गए थे। आज के दिन गौ माता की विशेष सेवा की जाती है।

२२. अक्षय नवमीं : (कार्तिक सुदी नवमी)

आज के दिन ही सत्युग का जन्म हुआ था। इस कारण यह अक्षय है तथा आज ही के दिन इन्द्र अपनी हार स्वीकार कर प्रभु श्री कृष्ण के चरणार्विंद में आए थे।

२३. देव प्रबोधिनी एकादशी : तुलसी विवाह : (कार्तिक सुदी एकादशी)

आज के दिन चतुर्मास की समाप्ति होती है और देवों को जगाया जाता है। आज ही के दिन तुलसी का विवाह ठाकुर जी के साथ किया जाता है।

२४. गोपमास आरम्भ : (कार्तिक वदी प्रतिपदा से मार्गशीष वदी प्रतिपदा)

आज के दिन एक महीने तक मनवान्छित वर की प्राप्ति के लिए गोकुल की गोपियों ने कात्यायनी व्रत किया था।

२५. श्री गुसाँई विट्ठलनाथ जी का उत्सवः(मार्गशीष वदी नवमी–पोष वदी नवमी)

आज का दिन गुसाँई जी के जन्मोत्सव के रूप में बड़ी भव्यता से मंदिरों में मनाया जाता है। आज के उत्सव को जलेबी उत्सव भी कहते हैं।

२६. धनुर्मास आरम्भ : (मार्गशीष/पोष)

धन (अनाज) की सक्रान्ति का प्रारम्भ से पूर्ण होने तक का महीना धनुर्मास कहलाता है।

२७. मकरसंक्राति : (पोष वदी अथवा सुदी)

आज के दिन भगवान सूर्य उत्तरायण करते हैं तथा तिल व गुड़ का दान किया जाता है।

२८. वसन्त पंचमी : (माघ सुदी पंचमी)

आज से वसन्तोत्सव मनाया जाता है जो पूरे चालीस दिनों तक मंदिरों में उल्लासपूर्वक मनाया जाता है।

२९. होली डंडा रोपण : (माघ सुदी पूर्णिमा)

आज के दिन भक्त जन मंदिरों से कीर्तन करते हुए जाते हैं और करीब ३० फीट ऊँचा होली डंडा निश्चित स्थान पर रोपा जाता है। आज से पूरे एक महीने तक ब्रज भक्त प्रभु श्री कृष्ण के साथ अबीर–गुलाल से होली खेलते हैं।

३०. श्रीनाथ जी पाटोत्सव : (माघ वदी सप्तमी – फागुन वदी सप्तमी)

आज के दिन श्री नाथ जी ब्रज से निकलकर मथुरा सतघरा में पधारे थे और सभी भक्तों ने इस अवसर पर मथुरा में पाटोत्सव मनाया था।

३१. होली उत्सव : (फागुन सुदी पूर्णिमा)

आज के दिन होलिका दहन होता है और शाम को होली का पूजन होता है। मंदिरों में चल रहे चालीस दिन के वसन्तोत्सव का आज समापन होता है।

३२. डोलोत्सव : (फागुन वदी प्रतिपदा–चैत्र वदी प्रतिपदा)

आज सभी मंदिरों में डोलोत्सव मनाया जाता है। आज के दिन अबीर–गुलाल से मंदिर रंगा जाता है।

३३. संवत्सरी उत्सव : (चैत्र सुदी प्रतिपदा)

ऐसी मान्यता है कि आज के दिन ब्रह्मा जी ने इस दुनिया को बनाया था इसलिए आज से नए वर्ष का आरम्भ माना जाता है।

३४. गण गौर : (चैत्र सुदी तीज)

३५. राम नवमी : (चैत्र सुदी नवमी)

श्री विष्णु भगवान के एक ओर मुख्य अवतार श्री राम का जन्मोत्सव राम नवमी के रूप में मनाया जाता है।

३६. महाप्रभु वल्लभाचार्य का प्राकटोत्सव : (चैत्र वदी एकादशी–वैशाख वदी एकादशी)

पुष्टिमार्ग के संस्थापक वैष्णवतार महाप्रभु वल्लभाचार्य जी का प्राकट्योत्सव मंदिरों में बड़े भक्ति भाव से मनाया जाता है।

३७. अक्षय तृतीया : (वैशाख सुदी तृतीया)

आज के दिन त्रेता युग का आरम्भ होता है इस कारण इस तिथि का कभी क्षय नहीं होता यह अक्षय है। आज से ग्रीष्म ऋतु का आरम्भ माना जाता है।

३८. नृसिंह चतुर्दशी : (वैशाख सुदी चतुर्दशी)

यह भी श्री विष्णु के मुख्य अवतार हैं अतः इस दिन भी मंदिरों में उत्सव मनाया जाता है।

३९. श्री यमुना जी का उत्सव–गंगा दशहरा : (जेठ सुदी दशमी)

आज के दिन श्री यमुना जी तथा श्री गंगा जी का मिलना हुआ था।

४०. स्नान यात्रा : (जेठ सुदी पूर्णिमा)

आज के दिन श्री कृष्ण तथा श्री राधा–स्वामि जी ने युगल स्वरूप से श्री यमुना नदी में स्नान किया था।

४१. रथयात्रा का उत्सव : (अषाढ़ सुदी द्वितीया)

आज का उत्सव पुष्टिमार्ग में पुष्य नक्षत्र देखकर मनाया जाता है। आज के दिन ठाकुर जी रथ में बिराजमान होकर भक्तों को दर्शन देने मंदिरों से बाहर आते हैं।

४२. कसुम्बा छठ : (अषाढ़ सुदी छठ)

आज से वर्षा ऋतु का आरम्भ माना जाता है और आज ही के दिन गुसाँई जी का विरह समाप्त हुआ और वे पुनः श्री नाथ जी की सेवा में पधारे थे।

४३. गुरु पूर्णिमा : (अषाढ़ सुदी पूर्णिमा)

आज के दिन वैष्णव अपने गुरु की पधरामणी अपने घर करते हैं तथा यथा शक्ति उनकी सेवा की जाती है।

४४. हिंडोला आरम्भ : (अषाढ़ वदी प्रतिपदा–श्रावण वदी प्रतिपदा)

आज से पूरे एक महीने तक श्री नाथ जी को हिंडोला में झुलाया जाता है और अलग–अलग मनोरथ सिद्ध किए जाते हैं।

४५. हरियाली अमास : (श्रावण वदी अमावस्या)

आज के दिन प्रभु को हरे रंग के वस्त्राभूषण पधराए जाते हैं।

४६. ठकुरानी त्रीज : (श्रावण सुदी तीज)

आज के दिन प्रभु श्री नाथ जी ने श्री यमुना जी के सभी मनोरथ अष्ट प्रहर में सिद्ध किए थे।

४७. **नाग पंचमी :** (श्रावम सुदी पंचमी)

आज के दिन श्री नाथ जी की उद्धव भूजा का प्राकट्य हुआ था।

४८. **बगीचा नोम :** (श्रावण सुदी नवमी)

९. पुष्टिमार्ग और ब्रज तथा ब्रजयात्रा :-

१. ब्रज : पुष्टिमार्गीय परिचय ::

'ब्रजन्ति गावो यत्र ब्रजस्तदुच्यतै वुधैः।' अर्थात वह क्षेत्र जहाँ भगवान श्रीकृष्ण ने गो–चारण किया था वह 'ब्रज' कहलाता है। इसका माप (८४) चौरासी कोस का माना जाता है। यहाँ गिरिराज गोवर्धन और श्याम सुन्दर यमुना नदी बहती है, साथ ही कई देवालय, शिलाखण्ड, सरोवर, गुफाएँ भी हैं जहाँ श्री कृष्ण ने अनेक लीलाएँ की थी। यह वह स्थान है जहाँ भगवान श्री कृष्ण अपनी नित्य सहचरी राधा के साथ सदैव नित्य लीला में रमण करते हैं, वह ब्रज धाम कहलाता है। अष्टछाप शिरोमणि सूरदास जी ने ब्रज–वृन्दावन का वर्णन कुछ इस प्रकार किया है–

'अविगत, आदि, अनन्त, अनुपम, अलख पुरुष अविनाशी।
पूरण ब्रह्म प्रगट पुरुषोत्तम, नित निज लोक विलासी।
यहाँ वृन्दावन आदि अजर यहाँ, कुंज लता विस्तार।
तहाँ विहरत प्रिय प्रीतम दोऊ, निगम भृंग गुंजार।
रत्न जटित कालिन्दी के तट, अति पुनीत चहाँ नीर।
सारस हंस चकोर मोर खग, कूजत कोकिल कीर।
जहां गोवर्धन पर्वत मणिमय, सधन कंदरा सार।
गोपी मण्डल विराजत, निशिदिन करत विहार।'

हरिवंश पुराण में ब्रज का स्वरूप निम्नलिखित पद द्वारा व्यक्त किया गया है–

'मधुर ब्रज देश वसि मधुर कीनों।
मधुर गोकुल गाँव मधुर श्री वल्लभ नाम,
मधुर विट्ठल-भजन दान दीनों।
मधुर श्री गिरिधरन आदि सप्त तनु वेणुनाद,
सप्त रंध्रन मधुर रूप लीनों।
मधुर फल फलित अति ललित,
प्रज्ञनाभ प्रभु मधुर अति गावत सरस रंग भीनों।'

अर्थात् व्रज देश तो मधुर है ही परन्तु वल्लभाचार्य ने इसमें निवास किया इसलिए यह और भी मधुर हो गया है। गोकुल गाँव, महाप्रभु वल्लभाचार्य का नाम यह सभी माधुर्य रस से परिपूर्ण है। गुसाँई जी ने हमें कण्ठी ब्रह्म सम्बन्ध देकर भजनान्द का दान दिया है। सात लालजी मानो वेणु के सात छिद्र हैं और उनके मुखारविन्द से उसी सुधा की वर्षा हो रही है जो भगवान भी कृष्ण द्वारा वेणुनाद के समय होती थी। इस भावना से ब्रज यात्रा करेंगें तो मधुर फल फलित होगा।

प्रथम स्कन्ध 'सुबोधिनीजी' में महाप्रभु वल्लभाचार्य ब्रज का अर्थ स्पष्ट करते हुए कहते हैं–'ब्रज गावाँ स्थानानि' अर्थात् गायों का स्थान ब्रज हैं। भगवान श्रीकृष्ण जब वेणुनाद करते हैं तो ब्रज के बैल, गाय, हिरनियों आदि के झुंड़ दौड़ आते थे और समीप में खड़े हो जाते थे।

हिन्दी साहित्य में मथुरा के आस पास के क्षेत्र के लिए 'ब्रज' शब्द का प्रयोग हुआ है। ब्रज शब्द का एक अर्थ यह भी है की जहाँ पूर्ण पुरुषोत्तम आनन्दकन्द भगवान श्री कृष्णचन्द की प्राप्ति के लिए जन समुदाय जाता है। जहाँ की रज (ब्रज–रज) के स्पर्श मात्र से मुक्ति मिल जाती है उस स्थान को 'ब्रज' कहते हैं।[२५]

विष्णु पुराण में तो ब्रज को भगवान श्रीकृष्ण का श्री अंग माना गया है। हृदय मथुरा, नासिका– मधुवन, स्तनद्वय–ताल वन और कुमुद वन, भाल–वृन्दावन,

बाहु–बहुलावन तथा महावन, पाद–कोकिला वन तथा भाण्डीर वन एवं दोनों स्कंधों को खिदर वन तथा भद्र वन कहा गया है।

भक्तों के हृदय को भी ब्रज कहा गया है जहाँ भगवान श्री कृष्ण सदैव वास करते हैं। इन्द्रियों को गो (गाय); आत्मा को गोपाल, जीव को गोप और जीव की वृत्तियों को ही गोपवधु कहा गया है इस प्रकार सब कुछ भगवत स्वरूपात्मक है। कवि नन्ददास अपनी 'रासपंचाध्यायी' में लिखते हैं–

'देवन में श्री रमा रमन नारायण प्रभु जस।
वनन में श्री वृन्दावन सुदेश सब दिन शोभित अस।
या वन की वर वानिक यो वन ही बनि आवें।
शेष महेश सुरेश गनेश हूं पार न पावै।
जहाँ जेतिक दुम जाति कल्प तरु सम सब लायक।
चिन्तामनी सम भूमि सकल चिंतितक्ष फल दायक।'

अर्थात् दिव्य ब्रज में सदा वसन्त ऋतु रहती है। देवों में जैसे नारायण हैं उसी प्रकार वनों में श्री वृन्दावन है। शेष, महेश, गणेश, इन्द्र आदि कोई भी इसका पार नहीं पा सकते हैं अर्थात् इसके ज्ञान को प्राप्त नहीं कर सकते हैं। यहाँ के सभी वृक्ष कल्पवृक्ष के समान हैं तथा यहाँ की यह ब्रज भूमि चिन्तामणि के समान है।

कवि परमानन्द दास जी भी ब्रज वासियों के प्रति अपने भाव को व्यक्त करते हुए कहते हैं–

'ये वेई हरि के ब्रज वासी।
कछुक गये संग कछुक रहे यहां।।
सो अब करत खवासी।।'

अर्थात् 'ब्रज वह स्थान है जहाँ गौ, गोपी, ग्वालबाल जैसे निःसाधन जीवों का पोषण भगवद् अनुग्रह द्वारा होता है। भगवान श्री कृष्ण जीवों को अपना कर उन पर अपनी कृपा करते हैं।'

कवि कृष्णदास भी ब्रज की अलौकिक महिमा जान कर ब्रज में वास करने की इच्छा करते हैं

'कोटि कल्प काशी बसे, अयोध्या बसे हजार।
एक निमिष ब्रज में बसें, बड़भागी कृष्णदास।'

इसीलिए छीतस्वामी भी विधाता से विनंती करते हैं कि मुझे अगर मनुष्य जन्म मिले तो ब्रज में ही मिले 'जनम-जनम दीजे मोहि याही ब्रज वसिवो।'
'ब्रज चौरासी कोस' का उल्लेख हमें निम्न दोहे में भी मिलता है-

'इस बरहद उत सोन हद, उस सूरसैन को गांव।
ब्रज चौरासी कोस में मथुरा मण्डल धाम।।'

आचार्य वल्लभाचार्य ने ब्रज को ही केन्द्र बनाकर अपने मार्ग का विस्तार किया है। वल्लभ सम्प्रदाय-पुष्टिमार्ग की सेवा प्रणाली के रग-रग में हमें ब्रज की, श्री कृष्ण की लीला देखने को मिलती है। अतः यह कहा जा सकता है कि पुष्टिमार्ग सदैव 'ब्रजराज कुँवर श्रीकृष्ण' के प्रेम में ओत-प्रोत रहता है। पुष्टिमार्गीय वैष्णवों की मंजिल सदा-सर्वदा ब्रज धाम ही है।

'ब्रज सम और कोऊ नहीं धाम।
या ब्रज में परमेश्वर हूं के, सुधरे सुन्दर नाम।
ब्रज सम्बन्धी नाम लेत ये, ब्रज की लीला गावे।
नागरीदासहि मुरली वारों, ब्रज का ठाकुर भावें।'

* * *

'ललित ब्रजदेश श्री गिरिराज राजें,
घोष सीमन्तनी संग गिरिवरधरण,
करतं नित्य केलि तहां काम लाजें।
त्रिविध परन संचरे, सुखद झरना झरें
अमेत सौरभ तहां मधुप गाजें।
ललित तरु फूल-फल,

फलित षट ऋतुसदा,
चतुर्भुजदास गिरिधर समाजें।'

२. ब्रज यात्रा ::

१. ब्रज यात्रा का परिचय–

विद्वानो के मतानुसार ब्रज यात्रा का आरम्भ उद्धव जी द्वारा माना गया है। श्रीमद् भागवत में भी भगवान श्री कृष्ण के सखा उद्धव जी की ब्रज यात्रा का वर्णन मिलता है। भगवान श्री कृष्ण के विरह में तड़पती हुई गोपियों को ज्ञान का उपदेश देने उद्धव जी ब्रज में आए थे। उस समय गोपियों ने उद्धव जी को उन सभी स्थलों के बारे में बताया था जहाँ उनके उपास्य और आराध्य श्री कृष्ण ने उनके साथ अनेक लीलाएँ की थी और इस प्रकार उद्धव जी को कृष्णावतार के समय में ही ब्रज परिक्रमा का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। श्रीमद् भागवत में तथा महाभारत ग्रन्थ में विदुर जी का भी ब्रजयात्रा करने का प्रसंग मिलता है।[२६]

कालान्तर में भगवान श्रीकृष्ण के प्रपौत्र ब्रजनाथ जी ने ब्रज के तीर्थों का पुनरुद्धार किया था तथा ब्रज देश की परिक्रमा भी की थी।[२७] इसके बाद भी भक्तों ने ब्रजयात्रा की होगी, परन्तु इसका कोई प्रामाणिक प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं।

२. पुष्टिमार्गीय ब्रज यात्रा का परिचय –

कालान्तर में जब वैष्णव धर्म का पुनरुद्धार हुआ तब फिर ब्रजयात्रा का क्रम शुरु हुआ होगा। किन्तु प्रथम किसने ब्रजयात्रा की इस बात का कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। विक्रम संवत १५४८ में महाप्रभु वल्लभाचार्य ब्रज में पधारे। उजागर चौबे को साथ लेकर महाप्रभु जी ने लुप्त हुए ब्रज के विभिन्न स्थानों को खोज कर वहाँ बस्तियाँ बसाई[२८] तथा उस जगह का महत्व बताया और वहां श्रीमद् भागवत का पारायण किया। वल्लभाचार्य ने ब्रज की परिक्रमा में १२ वनों को प्रधानता दी थी। आपकी ब्रज परिक्रमा ७ दिन की होती थी। इसी दौरान

वल्लभाचार्य जी ने गिरिराज पर्वत पर श्रीनाथ जी को प्रकट पाकर उनकी सेवा का क्रम भी शुरू किया, जो आज भी चल रहा है।[२९]

वल्लभाचार्य के पश्चात् उनके द्वितीय पुत्र विट्ठलनाथ जी ने ब्रज की यात्रा की। उन्होंने १२ वन के साथ १२ उपवन भी जोड़ दिए। अब ब्रजयात्रा ११ दिनों में पूर्ण की जाती थी। गुसाँई विट्ठलनाथ जी ने सामूहिक ब्रजयात्रा का प्रारम्भ किया था तथा जनता को सार्वजनिक रूप से ब्रजयात्रा करने की प्रेरणा दी थी। इस प्रकार आपने कृष्ण भक्ति का भी प्रचार किया। जिस ब्रजयात्रा का रोपण वल्लभाचार्य ने किया, उसको वृक्ष रूप देने का श्रेय गुसाँई विट्ठलनाथ जी को जाता है। गुसाँई विट्ठलनाथ जी के बाद भी ब्रजयात्रा की परम्परा को उनके लालजी गोस्वामी बालकों ने आगे चलाया। बीच में कुछ समय के लिए औरंगज़ेब के अत्याचारों के कारण ब्रजयात्रा बन्द–सी हो गई थी। इसे पुनः शुरू करने का श्रेय गोस्वामी पुरुषोत्तम जी महाराज (मथुरा) ख्यालवालों को जाता है। आपने ब्रज परिक्रमा को नवीन क्रम से शरू किया। अब यह ब्रज परिक्रमा ४०–४५ दिनों में सम्पन्न की जाती है।

३. पुष्टिमार्गीय ब्रज यात्रा की विधि –

महाप्रभु वल्लभाचार्य के वंश के गोस्वामी बालक सामूहिक ब्रजयात्रा के नियम का पालन आज भी करते हैं। गोस्वामी महाराज श्री ब्रजयात्रा का निश्चय कुछ समय पूर्व ही कर लेते हैं तथा कुमकुम पत्रिका छपवाते हैं। इन पत्रिकाओं को देश के सभी पुष्टिमार्गीय वैष्णवों तक पहुँचाने की व्यवस्था की जाती है। परिणामस्वरूप हजारों की संख्या में वैष्णव भक्त ब्रज परिक्रमा करने हेतु ब्रज में आते हैं। गोस्वामी महाराज भी गुसाँई विट्ठलनाथ जी की परम्परा का अनुकरण करते हैं। प्रथम वे गोकुल जाकर महाप्रभु जी की बैठक पर पधार कर आज्ञा लेते हैं तथा विश्राम घाट मथुरा आकर यमुना जी में दूध पधरा कर ब्रज यात्रा के नियम लेते हैं और अपने पुरोहित चौबे जी को साथ लेकर ब्रजयात्रा शुरू करते हैं।

वल्लभ सम्प्रदायनुवर्ती गोस्वामी बालकों ने ब्रजयात्रा के द्वारा ब्रज की रज तथा नवधा भक्ति के ज्ञान को जन–जन तक पहुँचाया है।

प्रतिवर्ष भाद्रपद वदी द्वादशी को ब्रजयात्रा का प्रारम्भ होता है। ब्रजयात्रा गुरु के सानिध्य में, गुरु की आज्ञा प्राप्त कर करनी चाहिए।[३०] श्रीमद् भागवत में कहा गया है कि ब्रजयात्रा करने से भगवान की लीलाओं का चिन्तन होता है; श्रवण, मनन और चिन्तन से भगवान श्री कृष्ण से प्रेम हो जाता है जो कि इस कलिकाल से हमें पार करवा देता है।[३१] चौरासी कोस ब्रज की परिक्रमा करने से चौरासी लाख योनियों के आवागमन से मुक्ति मिल जाती है। भक्त जन भी अपने पुरोहित चौबे के साथ विश्राम घाट जाकर यमुना जी में दूध पधरा कर तथा महाप्रभु जी की बैठक में दण्ड़वत कर ब्रज परिक्रमा का आरम्भ करते हैं। ब्रजयात्रा करने वाले प्रत्येक साधक को इन नियमों का पालन करना होता है।

१. यात्रिकों को ब्रह्म मुहूर्त में उठकर शौच–स्नानादि से निवृत होकर स्वच्छ वस्त्रों को धारण कर यात्रा करनी चाहिए।
२. यात्रा आनन्दपूर्वक करनी चाहिए तथा पैदल चलकर ही करनी चाहिए। जहाँ तक बन पड़े वाहनों का उपयोग नहीं करना चाहिए।
३. पैरों में किसी भी प्रकार का जूता–चप्पल नहीं पहना जाता है। खुले पैर चलने से ब्रज रज का सीधा स्पर्श होता है। आवश्यकता पड़ने पर कपड़े का जूता पहन सकते हैं।
४. यात्रा में पड़ने वाले सभी देवालयों के दर्शन करने चाहिए। जिस स्थान विशेष पर यात्रा पहुँचे वहाँ की लीला का स्मरण करना चाहिए।
५. यात्रा में आने वाले सभी कुण्ड़, कूप, वृक्ष सब भगवत्रूप हैं, उन्हें गन्दा नहीं करना चाहिए।
६. यात्रा में ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए तथा एक समय सात्विक भोजन करना चाहिए।

७. यात्रा के दौरान अष्टाक्षर महामंत्र (श्री कृष्णः शरणं ममः) का उच्चारण मन ही मन करते रहना चाहिए।

८. गोस्वामी आचार्य की आज्ञा का भी पूर्णतः पालन करना चाहिए।

हजारों की संख्या में आने वाले यात्रियों के लिए यात्रा में दोहरी टैन्ट व्यवस्था की जाती है। इस कारण यात्रा सरलता से बिना किसी रुकावट के चलती है। हर तरह के सामान जैसे–यात्रिकों के सामान, खाने–पीने की चीजें आदि के लिए वाहनों का उपयोग किया जाता है। इस यात्रा में पुलिस रक्षा दल, पोस्ट ऑफिस, बैंक, चिकित्सालय, बाजार, रास मण्डल का चौक आदि सभी प्रकार की सुविधाएँ जुटाई जाती हैं। रोशनी के लिए जनरेटर का उपयोग किया जाता है। टेंकरों द्वारा जल की व्यवस्था की जाती है। यात्रियों के एक स्थान से दूसरे स्थान जाने लिए टांगे, जीप जैसे वाहनों की व्यवस्था की जाती है। यात्रा के दौरान रास्ते में भजन–कीर्तन की कैसेट्स के द्वारा वातावरण को संगीतमय व भक्ति से सराबोर बनाया जाता है। स्थानविशेष के महत्व के अनुसार दैनिक रास लीला का आयोजन रास–मण्डल चौक में किया जाता है। साथ ही गोस्वामी बालकों द्वारा धार्मिक प्रवचनों का आयोजन भी किया जाता है। यात्रा के दौरान स्थान विशेष पर विविध मनोरथ, छप्पनभोग, कुंजवारा जैसे कार्यक्रम भी किये जाते हैं। ब्रजयात्रा का स्वरूप चलते–फिरते शहर के जैसा लगता है जहाँ–जहाँ से ब्रजयात्रा निकलती है मानो जंगल में मंगल–सा हो जाता है। वल्लभ सम्प्रदाय–पुष्टिमार्ग के आचार्य वल्लभाचार्य और गुसाँई विट्ठलनाथ जी ने ब्रज के लुप्त हुए तीर्थों को जीवन्त कर सामान्य जन समुदाय पर बड़ा उपकार किया है। ब्रजयात्रा द्वारा इन आचार्यों ने ब्रज की गरिमा की महिमा बढ़ाई है। वल्लभ सम्प्रदाय–पुष्टिमार्ग का यह योगदान निश्चित ही वन्दनीय है।[३२]

४. पुष्टिमार्गीय ब्रज यात्रा के स्थान–

पहले दिन यात्री गण मथुरा के अन्तर्गत दर्शनीय स्थानों की परिक्रमा व देवालयों–बैठकों के दर्शन करते हैं। इसमें मुख्य रूप से विश्राम घाट, महाप्रभु जी

की बैठक, श्री द्वारिकाधीश का मंदिर, वल्लभ सम्प्रदाय पुष्टिमार्ग के अन्य मंदिर, श्री कृष्ण जन्म भूमि, कंस किला आदि कई महत्वपूर्ण स्थानों के दर्शन करते हैं। दूसरे दिन यात्रा मथुरा से मधुवन की ओर चल देती है। मधुवन ब्रज के १२ वनों में सर्वप्रथम है। मधुवन को माहोली नाम से भी जाना जाता है। यहाँ चतुर्भुजराय जी का अति प्राचीन मंदिर है, महाप्रभु जी की बैठक है, ध्रुव टीला है जहाँ ध्रुव जी ने तपस्या की थी। यहाँ कृष्ण कुण्ड तथा लवणासुर की गुफा भी है। मधुवन भगवान श्री कृष्ण के गौचारण का स्थान है।

'मैया मेरी में नही माखन खायो। भोर भयो गैयन के पाछे मधुवन मोहि पठायो।'

मधुवन से यात्रा कुमुद वन जाती है। यहाँ कपिल मुनि का मंदिर है। यहाँ महाप्रभु जी की बैठंक भी है। कुमुद वन से यात्रा तालवन की ओर बढ़ती है। ताल के वृक्षों का वन–तालवन कहा जाता है। इसे आजकल तारसी गाँव भी कहते हैं। यहाँ बलदेव जी ने धेनुकासुर दैत्य का वध किया था। यहाँ बलदेव जी का मंदिर तथा बलभद्र कुण्ड है।

तालवन से यात्रा शान्तनु कुण्ड पहुँचती है। यहाँ राजा शान्तनु ने संतान की कामना हेतु सूर्य देव की उपासना की और संतान प्राप्त की। यहाँ आज भी लोग दूर–दूर से सन्तान प्राप्ति की मनौती मानने आते हैं। महाप्रभु वल्लभाचार्य शान्तनु कुण्ड में स्नान कर बहुला वन में पधारे थे। यहाँ बहुला गाय का मंदिर है, महाप्रभु जी की बैठक है। आगे भगवान के प्रिय सखा तोष का स्थान है, यहाँ तोष कुण्ड है। तोष सखा भगवान को नृत्य सिखाया करते थे। इसके आगे जिखिन गाँव है। यहाँ रेवती जी बलभद्र जी का कुण्ड है तथा बलदेव जी का मंदिर है। आगे चल कर यात्रा अड़ींग पहुँचती है। यहाँ भगवान श्री कृष्ण ने अड़–अड़ कर गोपियों से दान मांगा था तथा गोपियों के साथ जल विहार आदि किलोल कीए थे अतः यहाँ पर किलोल बिहारी जी का मंदिर है तथा किलोल कुण्ड है। यहाँ पास ही में भगवान श्री कृष्ण ने अरिष्टासुर दैत्य का वध किया था। आगे बढ़ने पर मुखराई गाँव आता है। यहाँ मुखरा देवी का मंदिर है और मुखराई कुण्ड है। यहाँ ग्वाल

पोखरा, रत्न सिंहासन आदि है। आगे राधा कुण्ड पर यात्रा पहुँचती है। यहाँ स्वामिनी जी का महल है, पास में महाप्रभु जी की बैठक है। यहाँ आगे आठों दिशाओं में आठ सखियों के कुण्ड है–चन्द्रभागा कुण्ड, चम्पकलता कुण्ड, सुदेवीजी कुण्ड, विशाखा कुण्ड, वृन्दाजी कुण्ड, ललिता कुण्ड, रंगदेवी कुण्ड तथा चित्रा कुण्ड। राधाकुण्ड के पास कृष्ण कुण्ड भी है। राधा कुण्ड को स्वामिनी जी ने अपने नख से खोदा था तथा कृष्ण कुण्ड को भगवान ने अपनी वेणु से खोदा था इस कारण इन दोनों कुण्डों में सदैव जल भरा रहता है। इनके अन्दर स्वामिनी जी का रत्नज़ड़ित महल है जहाँ ठाकुर जी और स्वामिनी जी सदैव रमण करते हैं। आगे जाने पर रास्ते में एक अति रमणीय स्थान आता है जिसे कुसुम सरोवर कहते हैं। यहाँ कुसुमा सखी की निकुंज है। यहाँ पर भगवान श्री कृष्ण ने राधा जी की वेणी गुँथी थी। कुसुम सरोवर के पास उद्धव कुण्ड है, और नारद कुण्ड है।

आगे कलोल कुण्ड होते हुए यात्रा गोवर्धन पहुँचती है। यहाँ पर मानसी गंगा है, महाप्रभुजी की बैठक है। पास में ब्रह्म कुण्ड है जहाँ ब्रह्मा जी को ज्ञान हुआ कि उन्होंने बछड़े चुराने का कार्य उचित नहीं किया। आगे दान घाटी है यहाँ श्री कृष्ण भगवान ने गोपियों से दान मांग कर छाक आरोगी थी। आगे पापमोचन कुण्ड है। थोड़ा और आगे ऋण मोचन कुण्ड है यहाँ श्री कृष्ण ने गोपिकाओं से कहा कि 'मैं तुम्हारा ऋणी हूँ।' आगे जाने पर यात्रा जमुनावतो गाँव पहुँचती है यह कुम्भन्दास जी और चतुर्भुचदास जी का गाँव है।

आगे जाने पर यात्रा परासौली, चन्द सरोवर पहुँचती है। यहाँ का सरोवर चन्द्रमा के समान गोल आकार का है। इसीलिए इसे चन्द्र सरोवर कहते हैं। यहाँ रास चोतरा है जहाँ भगवान श्री कृष्ण ने रास–क्रीडा की थी। यहाँ महाप्रभु जी तथा गुसाँई जी की बैठकें है। परासौली से ३ कि.मी. दूर पैठा गाँव है, यहाँ पर नारायण सरोवर है, क्षीर सागर तथा बलभद्र कुण्ड भी हैं, साथ में लक्ष्मी कूप, साक्षी गोपाल, सहस्त्र कुण्ड आदि कई दर्शनीय स्थान हैं।

चन्द सरोवर से यात्री आन्यौर पहुँचते हैं। यहाँ सदू पाण्डे के घर में महाप्रभु जी की बैठक है। यहाँ पास में गौरी कुण्ड है, गोविन्द कुण्ड है, सुरभि कुण्ड है। गोविन्द कुण्ड पर भगवान श्री कृष्ण ने इन्द्र का मान भंग किया था। यहाँ महाप्रभु जी की गुप्त बैठक है साथ ही गुसाँई जी की भी बैठक है। गोविन्द कुण्ड से आगे अप्सरा कुण्ड आता है। यहाँ पर नवल कुण्ड है। यहाँ पर गोपांगनाओं को नृत्य और गान की कला का ज्ञान प्राप्त हुआ था। अप्सरा कुण्ड से आगे पूंछरी गाँव है। यहाँ श्री नाथ जी की गायों की खिरक (गौशाला) थी। यहीं पर गोपाल सागर कुण्ड भी है। पूछरी से आगे श्याम ढाक नामक स्थान है यहाँ भगवान श्री कृष्ण गायें चराते थे व खेलते थे यहाँ पर छाक लीला होती थी।

आगे चल कर यात्रा जतीपुरा पहुँचती है। यह पुष्टिमार्ग का प्रमुख केन्द्र है। यहीं पर गिरिराज गोवर्धन में श्रीनाथ जी का मुखारविन्द है। सामने महाप्रभु जी की बैठक है। यह स्थान पुष्टिमार्ग में बड़ा पूजनीय व वन्दनीय माना जाता है। आगे हरजी कुण्ड है, गोविन्द स्वामी की कदम खण्डी है, बिलछू कुण्ड है। गुलाल कुण्ड है, जान–अजान वृक्ष है, रुद्र कुण्ड है, टोड को धनों है यहाँ श्रीनाथ जी को छुपाया गया था। सभी यात्रीगण एक दिन पूरे गिरिराज पर्वत की परिक्रमा करते हैं। यहीं पर मुखारविन्द के पास कुन्जवारा होता है।

जतीपूरा में सात दिन रुक कर यात्रा आगे ड़ीग की ओर बढ़ती है। यहाँ भवन स्थापत्य के सुन्दर नमूने देखने को मिलते हैं। ड़ीग से आगे यात्रा परमदरा गाँव पहुँचती है। यह गाँव श्रीदामा का है। इससे आगे यात्रा आदि बद्रीनाथ पहुँचती है यहाँ पर आदि बद्री नारायण के दर्शन होते हैं। यहाँ तप्त कुण्ड हैं, अलक गंगा भी है। आगे आनन्द्राद्रि घाटी है, पास ही में इन्दरौली गाँव है जो इन्द्रलेखा सखी का गाँव है। यहाँ इन्द्र कूप तथा इन्द्र कुण्ड हैं।

आगे यात्रा कामवन में पहुँचती है। यह भी पुष्टिमार्ग का प्रमुख केन्द्र है। यहाँ चौरासी तीर्थ प्रसिद्ध हैं। कामवन यशोदा जी का मायका (पीहर) है। यहाँ मधुसूदन कुण्ड, यशोदा कुण्ड, मोहिनी कुण्ड, चक्रतीर्थ, सेतुबन्धरामेश्वर (लंका कुण्ड),

लुक–लुक कुण्ड, श्याम कुण्ड आदि प्रसिद्ध दर्शनीय स्थान हैं। यहाँ से आगे चरण पहाड़ी है, यहाँ राधा जी के तथा भगवान के चरण चिन्ह के दर्शन होते हैं साथ ही छटकी पंसेरी, रत्नाकर सागर, ललिता जी की बावड़ि, नन्द कूप, नन्द बैठक, देवी कुण्ड, मोती कुण्ड, गया कुण्ड, गरुड़ कुण्ड, गदाधर भगवान के दर्शन, प्रयाग कुण्ड, काशी कुण्ड, गोमती कुण्ड, गोपीनाथ जी का मंदिर, चौरासी खम्भा, राधावल्लभ जी का मंदिर, सूर्य कुण्ड, राधा कुण्ड, शीतला कुण्ड, श्री कुण्ड, व्योमासुर की गुफा आदि दर्शनीय स्थानों से होती हुई यात्रा 'भोजन थाली' नामक स्थान पर पहुँचती हैं। यहाँ चट्टानों–शिलाओं पर स्वतःसिद्ध थालियाँ बनी हुई हैं। यहीं आगे कृष्ण कुण्ड, चरण कुण्ड, राम कुण्ड, राम मंदिर, अघासुर की गुफा, कामेश्वर महादेव का मंदिर, वराह कुण्ड, पांडवों का मंदिर, धर्म कुण्ड, धर्म कूप, पंचतीर्थ, मनोकामना कुण्ड, इन्द्र मंदिर, सुनहरी कदम्बखण्डी, रास मण्डल का चबूतरा आदि के दर्शन कर यात्री वापस अपने पड़ाव पर पहुँचते हैं। कामवन में यात्रा तीन–चार दिन रुकती है। कामवन में पुष्टिमार्ग के दो सेव्य स्वरूप बिराजमान हैं–पंचम गृह श्री गोकुलचन्द्रमा जी और सप्तम गृह–श्री मदनमोहन लाल जी।

कामवन से यात्रा बरसाना पहुँचती है। यहाँ राधा–स्वामिनी जी का लाडली जी का मंदिर है। दानगढ़, मानगढ़, विलासगढ़ यहाँ के प्रसिद्ध दर्शनीय स्थान हैं। यहाँ वृषभानु सरोवर है तथा पीरी पोखर है। रावडी कुण्ड, पावडी कुण्ड, मोर कुण्ड, तिलक कुण्ड, जल विहार कुण्ड, दोहनि कुण्ड, कृष्ण कुण्ड, आदि अनेक स्थान हैं। साथ ही गैदोखर, चित्र–विचित्र शिला, मणिक शिला, ललिता कुण्ड, विशाखा कुण्ड, मोहिनी कुण्ड, नौवारी व रत्नकुण्ड आदि स्थान भी देखने योग्य हैं। बरसाना की होली अपनी अप्रतिम विशिष्टता रखती है। इस दिन यहाँ मेला भी लगता है। बरसाना गाँव के पीछे चिकसौली गाँव के समीप सांकरी पोल है। यहाँ भादों सुदी एकादशी को दान लीला होती है। बरसाना के पास गहरव वन है। यहाँ से कुछ आगे प्रेम सरोवर नामक सुन्दर स्थान है। यहाँ गुसाँई जी की बैठक है। यहाँ पर रास चोतरा तथा प्रेम बिहारी जी का मंदिर है। यही संकेत वन है, यहाँ

भगवान श्री कृष्ण ने राधा जी के साथ विवाह खेल किया था। यहाँ महाप्रभु जी की बैठक है। बरसाना में यात्रा दो दिन रुकती है।

बरसाना से नंदगाँव जाते बीच में रीठौरा गाँव आता है जो चन्द्रावली जी का गाँव है। यहीं श्री कृष्ण भगवान ने पनघट लीला की थी। यहाँ गुसाँई जी की और चन्द्रावली जी की बैठकें है। बेल कुण्ड, पनिहारीकुण्ड, रोहिणी कुण्ड, चाँदोखर नामक दर्शनीय स्थान है।

नन्दगाँव भगवान श्री कृष्ण तथा नन्दबाबा का घर है। यहाँ चरण पहाड़ी है। यहाँ नन्दराय जी का मंदिर है, रत्न सिंहासन, मोती कुण्ड, फूलवारी कुण्ड, टेर कदम्ब, नन्देश्वर महादेव है, देवकी नन्दन जी का मंदिर है। यहाँ महाप्रभु जी की बैठक है। उद्धव जीं छ मास तक यहाँ ब्रज में रहे थे तो यहाँ उद्धव क्यारी है। साथ ही यहाँ और कई कुण्ड तथा चिह्नस्त शिलाएँ हैं। नन्दगाँव में यात्रा दो दिन रुकती है।

नन्दगाँव से आगे करहला नामक स्थान आता है जो ललिता जी का जन्म स्थान है। यहाँ महाप्रभु जी तथा गुसाँई जी की बैठकें हैं। यहाँ के रासधारी प्रसिद्ध हैं। करहला से आगे पियासौं गाँव आता है। यहाँ से आगे यात्री खिरकवन पहुँचते हैं, जहाँ गायों के खिरक (गौशालाएँ) हैं। यहाँ व्यास कुण्ड है, विशाखा जी की निकुंज, कृष्ण कुण्ड़ आदि स्थान से होती हुई यात्रा कोकिला वन पहुँचती है। यहाँ यात्रा एक दिन रुकती है। यहाँ कृष्ण कुण्ड है, महाप्रभु जी की बैठक है, पाण्डव गंगा है, बलभद्र कुण्ड है, श्याम कुण्ड है, चरण गंगा है जो श्री कृष्ण के श्री चरणों से प्रकट हुई है। आगे यात्रा कामर गाँव होती हुई कोट वन पहुँचती है। कोटवन उपवन है। यहाँ गुसाँई जी की बैठक है, ग्वाल पोखर कुण्ड है, दधि कुण्ड, गोमती कुण्ड, ब्रजभूषण कुण्ड, जोहरा कुण्ड आदि है। आगे चमेली वन पड़ता है। इससे आगे गोपी वन है। आगे चीर घाट है यहाँ टेर कदम्ब, चीर कदम्ब और ऐंठा कदम्ब प्रमुख हैं। आगे जाने पर कात्यायनी देवी का मंदिर है यहाँ कुमारिकाओं ने एक मास तक व्रत कर श्रीकृष्ण को पति रूप में प्राप्त किया था। चमेली वन से आगे

यात्रा शेषसायी पहुँचती है। यहाँ शेषसायी का मंदिर है तथा क्षीर सागर है। आगे नन्दन और चन्दन वन हैं। आगे यात्रा कोसी पहुँचती है। कोसी गाँव में भगवान श्री कृष्ण ने द्वारिका लीला के दर्शन कराए थे। यहाँ रत्न सागर है। यहाँ लक्ष्मीनारायण जी का मंदिर है, गोमती कुण्ड है। यहाँ महाप्रभु जी की बैठक है। यहाँ से आगे यात्रा शेरगढ़ की ओर बढ़ती है बीच में अक्षयवट, उजानी गाँव पड़ता है। इससे आगे लालवन और खेलनवन आता है। शेरगढ़ में दाउजी रेवती जी का मंदिर है। धर्मराय जी और गोपीनाथ जी के मंदिर हैं। आगे राधारमण जी और मदन मोहन जी, राधा कृष्ण जी और साक्षी गोपाल जी के भी मंदिर हैं। आगे भूषण वन, गुंजा वन और निवारन वन हैं। आगे यात्रा चीरघाट की ओर जाती है। यहाँ गुसाँई जी की बैठक है। आगे नंदघाट है। यहाँ आगे चतुर्मुखी ब्रह्माजी का मंदिर है, ब्रह्म कुण्ड है। यहाँ से भयगाँव होते हुए यात्रा बच्छवन की ओर बढ़ती है। यहाँ गुसाँई जी की बैठक है। यहाँ से आगे यमुना नदी पार कर भांडीरवन, श्यामवन, भाटवन और बेलवन जाया जाता है। भांडीरवन में बलदेव जी ने प्रलम्बासुर नामक राक्षस को मारा था। यहाँ भांडीर कूप है, आगे श्याम वन है, श्याम कुण्ड है, श्यामबिहारी ठाकुर जी का मंदिर है। आगे माटवन है, माटगाँव, यहाँ माट (मटका) बनते थे आज भी यहाँ माट बनाए जाते हैं। आगे बेलवन है यहाँ गुसाँई जी की बैठक है लक्ष्मी जी का मंदिर है।

यहाँ से आगे ब्रजयात्रा वृन्दावन जाती हैं। यहाँ महाप्रभु जी की और गुसाँई जी की बैठकें है। यहाँ गोपेश्वर महादेव जी का मंदिर है, ब्रह्म कुण्ड है आगे अक्रूर घाट है। आगे राजपुर, राजघाट, दावानल कुण्ड हैं। गोपाल घाट, पुष्नन्दन घाट, सूर्य घाट, जगन्नाथ घाट, भीम घाट, आनन्द घाट, शृंगार घाट, गोविन्द घाट आदि हैं, रास चबूतरा है। आगे चीर घाट, भंवर घाट पर भगवान ने भमरा–चकरी का खेल खेला था। आगे धीर–समीर घाट पर बंसीवट है. रास–चबूतरा है। यहाँ स्वामिनी जी की निकुंज है। वृन्दावन शहर में गोपीनाथ जी, लक्ष्मीनारायण जी, गोविंदराय जी, बाँके बिहारी जी, मदनमोहन जी आदि कई प्रमुख मंदिर हैं। यहाँ

श्यामतमाल वृक्ष में शालिग्राम जी के दर्शन होते हैं। वृन्दावन भगवान श्रीकृष्ण का प्रमुख लीला स्थान रहा है। यहाँ राधारमण जी का मंदिर है, सेवा कुन्ज है, जहाँ नित्य रात्रि को रास लीला होती है ऐसी स्थानीय लोगों की धारणा है। आगे यात्रा मान सरोवर जाती है यह स्वामिनी जी के मान करने का स्थान है यहाँ मान कुण्ड, कृष्ण कुण्ड है यहाँ महाप्रभु जी की बैठक है। वृन्दावन में यात्रा तीन दिन रूकती है।

आगे यात्रा लोहवन की ओर जाती है। यह बलदेव जी का स्थान है यहाँ ब्रलभद्र कुण्ड है। यहाँ बलदेव जी–रेवती जी का मंदिर है। आगे यात्रा चिंताहरण घाट तथा ब्रह्माण्ड घाट पहुँचती है। यहाँ भगवान श्री कृष्ण ने माटी खाई थी और माता यशोदा जी को अपने मुँह में सारे ब्रह्माण्ड के दर्शन करवाए थे। थोड़ा आगे अष्ट सखाओं का चोतरा है। आगे महावन है, यहाँ छठी के दर्शन होते हैं। पास में ८४ खम्भ हैं। यहाँ से आगे यात्रा गोकुल पहुँचती है। यह पुष्टिमार्ग का प्रमुख केन्द्र है। यह योगमाया की जन्म भूमि है। यहाँ खेलन वन और रमण रेती है। आगे गोप कुआँ है। इसे भगवान श्री कृष्ण ने अपनी बन्सी से खोदा था। आगे नारद टीला है। आगे गांधेश्वर गाँव है, वहाँ गोप तलैया है। आगे वल्लभ घाट है, गोपाल घाट है, यशोदा घाट, ठकुरानी घाट, नन्दघाट आदि कई घाट हैं। गोकुल गाँव यमुना नदी के किनारे बसा हुआ है इस कारण यहाँ कई घाट हैं। ठकुरानी घाट इनमें प्रमुख है। यहाँ पर महाप्रभु जी ने अर्ध रात्रि को श्रीनाथ जी के दर्शन किए थे और जीवों को ब्रह्म सम्बन्ध द्वारा श्री नाथ जी के चरणों में लाने का कार्य आरम्भ किया था। यहाँ पुष्टिमार्गीय सम्प्रदाय के कई मंदिर हैं। यहाँ महाप्रभु जी की और गुसाँई जी की बैठकें है। आगे महावन है जहाँ भगवान श्री कृष्ण ने पूतना राक्षसी का वध किया था। आगे यात्रा रावल गाँव होती हुई मथुरा के ब्राह्य स्थलों की परिक्रमा करती हुई पुनः मथुरा विश्राम घाट पहुँचती हैं। रावल गाँव में राधा जी का मंदिर है तथा राधा घाट है। विश्राम घाट मथुरा पहुँच कर यात्री गण अपने चौबे के साथ नियम छोड़ते हैं तथा चौबे जी को यथा शक्ति दान दक्षिणा देते हैं।

श्रीमद् भागवत् में कहा गया है कि ब्रज यात्रा करने से भगवान की लीलाओं का चिन्तन होता है। श्रवण, मनन और चिन्तन से भगवान श्री कृष्ण से प्रेम हो जाता है जो इस घोर कलिकाल के भव सागर से हमें पार ले जाता है। भक्तों में श्रद्धा है कि ब्रज चौरासी कोस की परिक्रमा चौरासी लाख योनियों के आवागमन से हमें मुक्ति प्रदान करती है–

'श्रीमुख वाणी कहत, विलम्ब अब नेक न लावहु।
ब्रज परिक्रमा करहु, देह को पाप नसावहु।'

नोट : ब्रज यात्रा का विस्तृत वर्णन हमें महाप्रभु वल्लभाचार्य तथा गुसाँई विट्ठलनाथ जी के बैठक चरित्र ग्रन्थ में मिलता है। इसमें ब्रज के महत्वपूर्ण स्थानों का विस्तृत **विवरण** मिलता है।

१०. पुष्टिमार्ग में राधा जी का महत्व :-

१. राधा का परिचय व महत्व ::

'राधा' शब्द के अनेक अर्थ मिलते हैं भक्ति, समृद्धि, साकल्य और द्युति (प्रकाश)। राधा शब्द का एक ओर अर्थ है कार्य साधिका।

भगवान श्री कृष्ण के साथ राधा का नाम अनन्तकाल से लिया जाता है। लौकिक–सांसारिक रूप में राधा को ब्रज की भोली–भाली कन्या के रूप में बताया गया है, जो बरसाना के गोप वृषभान की पुत्री हैं। राधा श्री कृष्ण की बाल सहचरी हैं, श्री कृष्ण के साथ खेलती हैं। राधा का अद्वितीय सौन्दर्य और शील स्वभाव श्री कृष्ण को आकर्षित करता है। कुछ समय पश्चात् श्री कृष्ण ब्रज देश छोड़ कर चले जाते हैं और राजनैतिक व सामाजिक कार्यों में व्यस्त हो जाते हैं, किन्तु वे अपनी बाल सहचरी राधा को नहीं भूल पाते हैं।

अलौकिक–आध्यात्मिक रूप में श्री राधा को श्री कृष्ण भगवान की पूर्ण सिद्ध शक्ति के रूप में माना गया हैं।[३३]

श्री राधा भगवान श्री कृष्ण के साथ नित्य उनके गोलोक धाम में निवास करती हैं। जब भगवान श्री कृष्ण को रमण (लीला) करने की इच्छा होती है तो वे अपनी इस पूर्ण सिद्ध शक्ति श्री राधा के साथ भू–लोक (पृथ्वी) के ब्रज मण्डल में अवतरित होते हैं। साथ ही उनका समस्त लीलाधाम अर्थात् गो, गोप–ग्वाल, गोपियाँ, यमुना, गोवर्धन आदि भी अवतरित होते हैं।

२. पुष्टिमार्ग में राधा का स्थान ::

वल्लभाचार्य ने अपने पुष्टिमार्ग में गुरू के रूप में ब्रज की गोपियों का स्वीकार किया है[३४] जिनकी मुख्या राधा जी हैं। पुष्टिमार्ग गोपिकाओं की सेवा रीति–प्रीति का मार्ग है।[३५] पुष्टिमार्ग में सभी ब्रजांगनाओं के चार यूथ माने गए हैं

पहला यूथ–नित्य सिद्धाओं का हैं जिनकी यूथपति स्वयं स्वामिनी श्री राधा जी हैं।

दूसरा यूथ–श्रुति रूपा (अन्यपूर्वा) गोपिकाओं का हैं जिनकी यूथपति चन्द्रावली जी हैं।

तीसरा यूथ–ऋषि रूपा (अनन्यपूर्वा) गोपिकाओं का है। इनकी यूथपति राधासहचरी हैं।

चतुर्थ यूथ–प्रकीर्ण गोपिकाओं का है। इनकी यूथपति श्री यमुना जी हैं।

इन चारों यूथों में राधा जी और यमुना जी स्वामिनी स्वरूप हैं। इन सभी ब्रजांगनाओं पर भगवान श्री कृष्ण की अपार कृपा रहती है। इन ब्रजांगनाओं को श्री कृष्ण के नित्य सहचर्य का जो सुख मिला है और वियोग का जो ताप इन ब्रजांगनाओं ने अनुभव किया है, वही सुख और ताप का अनुभव पुष्टिमार्गीय वैष्णव चाहते हैं। पुष्टिमार्ग में भी स्वामिनी श्री राधा को श्री कृष्ण की अभिन्न मुख्य शक्ति माना गया है। जिनका सहज निवास श्री कृष्ण के समान (श्री कृष्ण के साथ) सर्वत्र रहता है।

पुष्टिमार्ग के संस्थापक वल्लभाचार्य ने 'पुरुषोत्तम सहस्त्रनाम' में एक स्थान पर 'राधा विशय सम्भोग प्राप्त दोष निवारकः' कह कर श्री कृष्ण का स्मरण किया है। 'परिवृढाष्टकम्' नामक रचना में 'कलिंदोद् भूतायास्तटमनुचरन्ती पशुपजाँ ' आदि श्लोकों द्वारा राधा जी का साक्षात् दर्शन कराया है। आचार्य जी ने अपने ग्रन्थ 'श्रीकृष्ण प्रेमामृत' में 'राधावरन्धनरत', 'राधा सर्वस्व सम्पुट','राधिका रति लम्पट' आदि विशेषणों द्वारा (राधा के नाम के द्वारा) श्री कृष्ण का उल्लेख किया है। 'त्रिविध नामावली' नामक रचना में प्रमोदलीला नामों में आचार्य जी ने 'राधा सहचराय नमः' कहकर भगवान श्री कृष्ण को सम्बोधित किया है।

गुसाँई विट्ठलनाथ जी ने भी अपनी रचनाओं में राधा को भगवान श्री कृष्ण की अनन्य सहचरी माना है–'भुजंगप्रयाताष्टक' नामक स्तोत्र में गुसाँई जी ने 'राधिका–राधिका साधकार्थ प्रसाद प्रभो कृष्ण देव!' द्वारा भक्ति प्राप्ति की कामना की है तो दूसरी और 'राधा प्रार्थना चतुः श्लोकी'[३६] में गुसाँई जी स्वामिनी श्री राधा की कृपा द्वारा भगवद् भक्ति प्राप्त करना चाहते हैं। इसके अलावा स्वामिनी प्रार्थना, दान लीलाष्टक, रस सर्वस्व, शृंगार रस, स्वप्न दर्शन आदि लघु ग्रन्थों में तथा शृंगार रास मण्डन आदि वृहद् ग्रन्थों द्वारा स्वामिनी श्री राधा का स्वरूप निरूपण किया है।

इस प्रकार स्वामिनी श्री राधा जी का परोक्ष व प्रत्यक्ष दोनों स्वरूप हमें पुष्टिमार्ग में गम्भीर रूप से देखने को मिलते हैं।

'भावनीया नित्यमेवं भूता मत्स्वामिनी हरेः।
तदेक हृदय–स्थायी तद्भावः कृष्ण एवहि।। १०।।
लीला सहस्त्रवलितः सामग्री सहितस्तथा।
भावनीयः सदानन्दः सदा नन्दादिलालितः।। ११।।'[३७]

११. पुष्टिमार्ग में श्री यमुना जी का महत्व :–

पुष्टिमार्ग में आराध्य श्री कृष्ण (श्री नाथ जी) के साथ स्वामिनी रूप में श्री यमुना महाराणी का नित्य निवास है।

यमुना जी के दो स्वरूप हैं : आधिदैविक रूपः चतुर्थ यूथ की स्वामिनी

आधि भौतिक रूपः जलप्रवाह रूप (नदी)

गोलोक धाम में यमुना जी का नाम विरजा सखी है। यमुना जी का प्राकट्य श्री ठाकुर जी (भगवान श्री कृष्ण) एवम् श्री स्वामिनी जी (श्री राधा) के श्री अंग से हुआ है–

'श्री राधा माधव अंग में प्रगट भई इक वाम।

नख ते कटि तौ राधिका कटि ते शिख लौं श्याम।'

यमुना जी के पिता सूर्यनारायण हैं, माता संज्ञादेवी हैं तथा यमराज बड़े भाई हैं। भक्तों में मान्यता है कि जो भक्त यमुना नदी में स्नान करते हैं तथा यमद्वितीया को जो भाई–बहिन यमुना नदी में स्नान करते है, वे मंगलमय जीवन तथा प्रभु की कृपा प्राप्ति के अधिकारी बनते हैं। पुष्टिमार्ग में यमुना जी का जन्म चैत्र शुक्ल षष्ठी (छठी) को मनाया जाता है। इस दिन मथुरा के विश्राम घाट पर भव्य समारोह होता है। पहले शास्त्रानुसार विधिवत् रूप से यमुना जी की पूजा–अर्चना की जाती है, फिर आरती की जाती है तथा अनेक मनोरथ भी किए जाते हैं।

महाप्रभु वल्लभाचार्य जब पहली बार गोकुल पधारे तब वहाँ केवल घना वन था तथा आप यमुना नदी के तट पर आए। किन्तु वल्लभाचार्य यह निश्चित नहीं कर पाए की कौन–सा ठकुरानी घाट है और कौन–सा गोविन्द घाट है। तभी यमुना नदी के जलप्रवाह के मध्य से एक सुन्दर स्त्री महाप्रभु वल्लभाचार्य के पास आकर कहती है कि आप जिस छोंकर के वृक्ष के नीचे खड़े हैं, यही गोविन्द घाट है तथा आपके दक्षिण ओर ठकुरानी घाट है। उस नव यौवना स्त्री को महाप्रभु वल्लभाचार्य ने पहचान लिया कि यही यमुना महाराणी हैं। तभी महाप्रभु जी ने श्री यमुना जी को दण्डवत् (प्रणाम) कर उनकी स्तुति की, जिसे पुष्टिमार्ग में 'श्री

यमुनाष्टक' कहते हैं। यमुनाष्टक में महाप्रभु जी ने श्री यमुना महाराणी के स्वरूप और महात्म्य का दिग्दर्शन किया है–

श्री यमुनाष्टक

१. नमामि यमुनामहं सकलसिद्धि हेतुं मुदा।
मुरारि पद्पंकज स्फुरदमन्द रेणूत्कटाम्।
तटस्थ नवकानन प्रकटमोद पुष्पाम्बुना।
सुरासुरसुपूजित स्मरपितुः श्रियं बिभ्रतीम्॥ १ ॥

(समस्त अलौकिक सिद्धियों को देने वाली, मुरादैत्य के शत्रु भगवान श्री कृष्णचन्द्र कें चरण कमल की तेजस्वी और अधिक अर्थात् जल में विशेष रेणु को धारण करने वाली, अपने तट पर स्थित नवीन वन के विकसित सुगन्धित पुष्प मिश्रित जल द्वारा सुर अर्थात् दैव्यभाव वाले ब्रज भक्तों के द्वारा और असुर अर्थात् मानभाव वाले ब्रजभक्तों के द्वारा अच्छी प्रकार से पूजित, तथा श्री कृष्णचन्द्र की शोभा को धारण करने वाली, श्री यमुना महाराणी जी को मैं (वल्लभाचार्य) सहर्ष नमस्कार करता हूँ।)

२. कलिन्द गिरिमस्तके पतदमन्दपूरोज्ज्वला।
विलास गमनोल्लसत्–प्रकटगण्डशैलोन्नता।
सुधोष गति दन्तुरा समधि रुढदोलोत्तमा।
मुकुन्दरतिवर्धिनी जयति पद्मबन्धोः सुता॥ २॥

(सूर्य मण्डल में स्थित प्रभु के हृदय से रस रूप में प्रकट होकर फिर कलिन्द पर्वत के शिखर पर गिरते हुए अनन्त प्रवाहों से उज्जवल, विलास सहित चलने से सुन्दर और उत्तम शिलाओं से उन्नत तथा ध्वनि सहित गमन से ऊँची–नीची होती अर्थात् उत्तम झूले में विराजित हुई–सी दिखती एवं श्री कृष्णचन्द्र में प्रीति बढ़ाने वाली सूर्यपुत्री श्री यमुना महाराणी जी श्रेष्ठता से विराजमान हैं, श्री यमुना महाराणी जी की जय हो।)

३. भुवं भुवनपावनी मधिगतामनेकस्वनैः।

प्रियाभिरिव सेवितां शुकमयूरहंसादिभिः।

तरंग भुज कंकण प्रकटमुक्तिकावालुका।

नितम्बतटसुन्दरीं नमत कृष्णतुर्यप्रियाम्॥ ३॥

(सम्पूर्ण लोगों को पवित्र करने वाली, भूमण्डल में पधारने पर जैसे प्रिय सखियों द्वारा सेवित होती हो वैसे ही अनेक शब्द बोलते हुए तोता, मोर और हंसादि से मधुर शब्द बोलनेवाले पक्षियों के द्वारा सुसेवित हुई और तरंग रूपी भुजाओं के कंकणों में स्पष्ट दिखनेवाली, मोतियों के समान चमकनेवाली वालुकायुक्त एवं नितम्ब भाग रूप उभय तटों से सुन्दर लगने वाली श्री कृष्ण की चतुर्थ प्रिया श्री यमुना जी को तुम नमन करो।)

४. **अनन्तगुण भूषिते शिव विरंचिदेवस्तुते।**

धनाधन निभे सदा ध्रुव पराशराभीष्ट दे।

विशुद्ध मथुरातटे सकलगोपगोपी वृत्ते।

कृपाजलधिसंश्रिते मम मनः सुखं भावय॥ ४॥

(अनन्तगुणों से सुशोभित, शिव ब्रह्मादि देवताओं द्वारा स्तवित, निरन्तर गम्भीर मेघ के समूह के समान देदीप्यवती, ध्रुव और पराशर को मनोवान्छित फल दान करनेवाली, अत्यन्त शुद्ध मथुरा नगरी जिसके तट पर बसी हुई है तथा सम्पूर्ण गोप–गोपीजनों से आवृत कृपासागर श्री ब्रजाधीश्वर के आश्रय में रहने वाली हे श्री यमुना जी! हमारे मंन को सुख अर्थात् आनन्दानुभव प्राप्त कराइये।)

५. **यया चरणपद्मजा मुररिपोः प्रियंभावुका।**

समागमनतोऽभवत् सकलसिद्धिदा सेवताम्।

तया सदृशतामियात् कमलजासपत्नी व यत्।

हरि प्रिय कलिन्दया मनसिमे सदा स्थायताम्॥ ५॥

(जिन यमुना जी के संगम से भगवद्च्चरण से प्रकट हुई श्री गंगाजी भी भगवान् को प्रिय हुई, उन श्री यमुना जी की समानता भला कौन प्राप्त कर सकता है ? हाँ! यदि कुछ समानता कर सकती हैं तो वह कुछ न्यूनता के साथ श्री लक्ष्मी जी ही !

ऐसी सर्वोपरि तथा भगवद् भक्तों के क्लेश नाश करने वाली श्री यमुना जी मेरे मन में निरन्तर वास करें।)

६. **नमोऽस्तु यमुने सदा तव चरित्रमत्यद्भुतं।**
न जातु यमयातना भवति ते पयः पानतः।
यमोऽपि भगिनी सुतान् कथमु हन्ति दुष्टानपि।
प्रियोभवति सेवनात्तव हरेर्यथा गोपिकाः ॥ ६ ॥

(हे श्री यमुना जी ! आपको निरन्तर नमस्कार हो। आपका चरित्र अत्यन्त विलक्षण है। आपके जल का पान करने से किसी भी समय यम की यातना (नरकवास) नहीं होती। क्योंकि यमराज भी अपनी बहिन के दुष्ट पुत्रों को कैसे मार सकते हैं ? आपका सेवन करने से जैसे गोपीजन भगवान् ब्रजेश्वर श्री कृष्ण को प्रिय बने, उसी प्रकार जीव भी आपके सेवन से भगवद् प्रिय बनता है।)

७. **ममास्तु तव सन्निधौ तनुनवत्व मेतावता।**
न दुर्लभतमा रतिः मुररिपौ मुकुन्दप्रिये।
अतोस्तु तव लालना सुरधुनी परंसंगमात्।
तवैव भुवि कीर्तिता न तु कदापि पुष्टि स्थितैः ॥ ७ ॥

(मुक्ति देनेवाले श्री कृष्ण की प्रिया हे यमुना जी, आपके सान्निध्य में हमारा नवीन शरीर हो, केवल इतने से अर्थात् शरीर परिवर्तन से ही मुरारि श्री कृष्ण में अत्यन्त प्रीति होती है। इसलिए आजीवन आपकी स्तुति करना ही श्रेयस्कर है। श्री गंगा जी ने भी आपके ही सतसंग से पृथ्वी पर प्रशंसा प्राप्त की है, परन्तु आपके संगम बिना पुष्टिस्थ जीवों ने अकेली गंगा जी की भी स्तुति नहीं की।)

८. **स्तुतिं तव करोति कः कमलजासपत्नि प्रिये।**
हरेर्यदनुसेवया भवति सौख्यमामोक्षतः।
इयं तव कथाधिका सकल गोपिका संगमः।
स्मरश्रमजलाणुभिः सकलगात्रजैः संगमः ॥ ८ ॥

(हे हरिप्रिये यमुने ! आप लक्ष्मी जी के समान सौभाग्यवती हैं, आपकी स्तुति कौन कर सकता है ? क्योंकि श्री हरि के पश्चात् जिसकी (लक्ष्मी) सेवा से मुक्ति पर्यन्त समस्त सुख प्राप्त हो जाते है, पर आपकी गाथा उससे भी श्रेष्ठ है, जिसमें श्री कृष्ण के साथ समस्त गोपियों के संगम के द्वारा उनके समस्त अंगों से उत्पन्न श्रम के स्वेदजल (जलबिन्दु) बिन्दुओं का भी परम रसमय संगम हो जाता है।)

९. **तवाष्टकमिदं मुदा पठति सूरसूते सदा।**
समस्त दुरितक्षयो भवति वै मुकुन्दे रतिः।
तया सकल सिद्धियो मुररिपुश्च सन्तुष्यति।
स्वभावविजयो भवेद् वदति वल्लभः श्री हरेः ।। ९ ।।

(हे सूर्य पुत्री यमुने ! जो आपके इस अष्टक का आनन्दमय चित्त से पाठ करता है उसके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं, निश्चित ही उसकी मुकुन्द भगवान् में प्रीति होती है जिसके कारण उसे सकल सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं और मुरारी भगवान श्री कृष्ण सन्तुष्ट होते हैं, स्वभाव पर विजय प्राप्त होती है। इस प्रकार श्री हरि के परम प्रिय श्रीमद् वल्लभाचार्य कहते हैं।)

पुष्टिमार्गीय जीव सदैव ब्रजलीला को प्राप्त करना चाहते हैं और ब्रजलीला की अधिष्ठात्री श्री यमुना महाराणी है, जिनके स्मरण, जलपानादी से भक्तों के सभी मनोरथ (इच्छा) पूर्ण होते हैं। श्री यमुना की कृपा से ब्रजवास मिलता है तथा भगवान श्री कृष्ण की ब्रजलीला का आनन्द प्राप्त होता है। अष्टछाप के कवियों ने, गोस्वामी हरिराय जी और भक्त गंगाबाई ने मिल कर यमुना जी के ४१ पदों की रचना की है जिनमें यमुना महाराणी का स्वरूप, महात्म्य आदि का वर्णन है। इसके अलावा गुसाँई विट्ठलनाथ जी ने भी यमुना जी पर कई रचनाएँ की हैं–यमुनाष्टपदी, यमुनाविज्ञप्ति आदि। अन्य पुष्टिमार्ग भक्तों ने भी यमुना जी पर अपनी रचनाएँ की हैं।

'जमुना जल को नमन करि,
जमुना जल कौं पान।
जमुना जल पुनि ध्यान धरि,

जमुना जल उस गान ।।'

१२. पुष्टिमार्ग में गिरिराज गोवर्धन का स्वरूप :-

पुष्टिमार्ग के परम आराध्य देव 'गिरिराजधरण गोवर्धननाथ श्री नाथ जी' हैं। श्रीनाथ जी का प्राकट्य मथुरा के समीप गिरिराज गोवर्धन पर्वत में स्वतः हुआ है। इस कारण गिरिराज गोवर्धन पर्वत पुष्टिमार्ग में भगवद् रूप के समान पूजनीय व वन्दनीय माना जाता है। सर्वप्रथम वि. सं. १४६६ के श्रावण कृष्ण तीन रविवार के दिन श्री नाथ ज़ी की ऊर्ध्व भुजा का प्राकट्य हुआ था सम्पूर्ण स्वरूप का प्राकट्य लगभग ६९ वर्ष पश्चात् वि.सं. १५३५ के वैशाख कृष्ण एकादशी के दिन हुआ था।[३८] ब्रजवासियों ने इस स्वरूप का दर्शन किया तथा पूजन–अर्चन किया। इस अवसर पर पूरे ब्रज में सर्वत्र अलौकिक आनन्द छा गया था–

'नंद महरि के पूत भयो।
बड़ी बेस जायो है ढोढा।
निरखत सब संताप गयो।
घर–घर ते सब चली जुवति जन
अंग अंग सुभंग सिंगार किये।
कुम्भनदास गिरिधर के प्रकटे,
नाचत सब मिल मुदित हिये।।'

अपने कृष्णावतार में भगवान श्री कृष्ण ने एक रूप में गिरिराज गोवर्धन की पूजा (प्रकृति पूजा) करवाई थी और दूसरी ओर खुद (गिरिराज गोवर्धन पर्वत के रूप में) समर्पित समस्त सामग्री व पूजा को ग्रहण किया था।[३९] 'श्याम की शोभा गिरि भयो, गिरि की शोभा श्याम'। गिरिराज गोवर्धननाथ श्रीनाथ जी का स्वरूप श्याम है। श्रीनाथ जी एक भुजा पर गिरिराज पर्वत को धारण किए हुए हैं तथा दूसरी भुजा कटि पर रखे हुए हैं। श्रीनाथ जी की पीठिका चौरस है इस पीठिका में तीनों ओर पर्वत हैं और एक ओर उनका मुखारविन्द है–

'देख्यो री मैं श्याम स्वरूप।
वामभुजा ऊँचें कर गिरिधर
दक्षिण कर कटि धरत अनूप।। १ ।।
मुष्टिका बाँध अंगुष्ठ दिखावत
सम्मुख दृष्टि सुहाई।
चरण कमल युगल समधर के
कुंज द्वार मन लाई।। २ ।।
अति रहस्य निकुंज की लीला
ह्दय स्मरण कीजैं।
द्वारिकेश मन वचन अगोचर
चरण कमल चित दीजै।
वैश्वानरो वल्लभाख्यः समुद्रोहित कृत्सताम्'

गिरिराज गोवर्धननाथ श्रीनाथ जी अपनी समस्त लीला सामग्री के साथ ब्रज में प्रकट हुए है, इसका प्रमाण गर्ग संहिता के गिरिराज खण्ड में मिलता हैं–

'येन रूपेण कृष्णेन, घृतो गोवर्द्धनो गिरिः।
तद्रुपं विधते तत्र राजन् श्रृंड़गारमण्डले ।। १ ।।
अब्दाश्चतुः सहस्त्राणि तथा पन्च शतानि च।
गतास्तत्र कलेरा दौं क्षेत्रे श्रृंगारमण्डले।। २ ।।
गिरिराजगुहामध्यात्सर्वेषां पश्यतां नृप।
स्वतः सिद्ध च तद्रुप हरेः प्रादुर्भविष्यति ।। ३ ।।
श्रीनाथ देवदमनं त वदिष्यन्ति सज्ज्नाः।
गिरिराज गिरौ राजन् सदा लीलां करोति यः ।। ४ ।।
ये करिष्यन्ति नेत्राभ्यां तस्य रूपस्य दर्शनम्।
ते कृतार्थ भविष्यति श्री शेलेन्द्रे कलौ जनाः ।। ५ ।।
जगन्नाथो रड़गनाथो द्वारकानाथ एव च।

बदरीनाथश्चतुष्कोणे भारतस्यापि वर्तते।। ६ ।।
मध्ये गोवर्द्धन स्यापि नाथोऽयं वर्तते नृप।
पवित्रे भारते वर्षे पन्चनाथः सुरेश्वराः ।। ७ ।।
सद्धर्ममण्डपस्तम्भा आर्तत्राणपरायणाः।
तेषां तु दर्शन कृत्वा नरो नारायणो भवेत्।। ८ ।।
चतुर्णां भुवि नाथानां कृत्वा यात्रा नरः सुधीः ।
न पश्चेदेवदमनं सा यात्रा निष्फला भवेत्।। ९ ।।
श्री नाथ देवदमन पश्चेद्गोवर्द्धने गिरौं।
चतुर्णां भुवि नाथानां यात्रायाश्च फलं लभेत् ।। १० ।। इत्यादि [४०]

श्रीनाथ जी की रक्षा के लिए चार व्यूहों का प्राकट्य भी गिरिराज गोवर्धन पर स्वतः हुआ है– [४१] पहले व्यूह में संकर्षण कुण्ड में से संकर्षण देव का प्राकट्य हुआ है। दूसरे व्यूह में गोविन्द कुण्ड में से गोविन्द देव जी का प्राकट्य हुआ है। तीसरे व्यूह में दानघाटी के ऊपर दानीराय जी का प्राकट्य हुआ है। और चौथे व्यूह में श्री कृण्ड (राधा कुण्ड) में से हरिदेव जी का प्राकट्य हुआ है। ये चारों श्रीनाथ जी की सेवा में सदा तत्पर रहते हैं।

जिस समय गिरिराज गोवर्धन में श्री नाथ जी के मुखारविन्द का प्राकट्य हुआ, उसी समय अर्थात् वि.सं. १५३५ के वैशाख कृष्ण एकादशी के दिन महाप्रभु वल्लभाचार्य का जन्म भी हुआ।[४२]

पुष्टिमार्ग में गिरिराज गोवर्धन को हरिदासवर्य कहा जाता है क्योंकि गोवर्धन की देह, कंदराएँ (गुफाएँ), तृण, लता–पेड़–पौधै सब कुछ नित्य–सदैव भगवान श्रीनाथ जी की सेवा में समर्पित रहते हैं। गिरिराज गोवर्धन दास्यभक्ति के उत्कृष्ट प्रतीक हैं।[४३]

षट्ऋतु की वार्ता में गिरिराज गोवर्धन के स्वरूप का वर्णन इस प्रकार किया गया है–

'सौ श्री गिरिराज जी कौ स्वरूप कैसो हैं ? जो–बारह बरस के बालक को सो, और लाल वस्त्र पहेरे हैं। और लाल छरी श्री हस्त में लिये हैं। और श्याम स्वरूप हैं। सो मन्द–मन्द मुसिकाय के छेओं सखीन सौं पूछें जो कहा आज्ञा है ?' गिरिराज गोवर्धन पर्वत के स्वरूप की महिमा ८४ वैष्णवन की वार्ता में 'अच्युत दास गोड की वार्ता' (संख्या–५४) तथा २५२ वैष्णवन की वार्ता में 'ब्राह्मण विरक्त वैष्णव गुजरात कों' की वार्ता (संख्या–१६१) में से भी प्राप्त होता है। इन दोनों वार्ताओं में महाप्रभु जी ने तथा गुसाँई जी ने गिरिराज गोवर्धन पर्वत की अलौकिक महिमा का दर्शन भक्तों को करवाया है। षट् ऋतु की वार्तानुसार भगवान श्री कृष्ण तथा स्वामिनी राधा जी नित्य गिरिराज जी की कन्दरा में बिराजमान रहते हैं। गिरिराज की कन्दरा में छः ऋतुओं का निवास नित्य रहता हैं–

१. चरण घाटी से दंडौती शिला तक पहली निकुंज में बसन्त ऋतु रहती है जो सूर्योदय से दस घड़ी दिन तक (सुबह दस बजे तक) रहती है। ये ऋतु चैत्र–वैसाख मास में होती हैं।

२. दंडौती शिला से मानसी गंगा तक दूसरी निकुंज में ग्रीष्म ऋतु रहती है जो सुबह दस बजे से बारह बजे तक रहती है। ये ऋतु ज्येष्ठ–अषाढ मास में होती है।

३. मानसी गंगा से श्री कुण्ड तक तीसरी निकुंज में वर्षा ऋतु रहती है जो दोपहर दो बजे से शाम तक रहती है। ये ऋतु श्रावण–भादों मास में होती है।

४. श्री कुण्ड से चन्दसरोवर तक शरद ऋतु रहती है। जो (सायंकाल) शाम से रात दस बजे तक रहती है। ये ऋतु आश्विन–कार्तिक मास में होती है।

५. चन्द्र सरोवर से आन्यौर तक हेमन्त ऋतु रहती है जो रात दस बजे से दो बजे तक रहती है। ये ऋतु मार्गशिष–पौष माह में होती है।

६. आन्यौर से गोविन्द कुण्ड तक शिषीर ऋतु रहती हैं। जो रात दो बजे से सूर्योदय तक रहती है। ये ऋतु माघ–फाल्गुन मास में होती है।

SMT. HANSA MEHTA LIBRARY

इस तरह बारह मास में छः ऋतु–नित्य गिरिराज पर्वत पर निवास करती हैं। इन छः निकुंजों में हर ऋतु की एक निकुंज है, सोने, हीरे, पन्ने, माणिक, पोखराज आदि से जड़ित है और दूसरी निकुंज फुल–पत्तियों (पुष्पलतामय) से बनी हैं। साथ ही यमुना जी भी अपने दोनों स्वरूपों में गिरिराज में बिराजमान हैं। इनके साथ ३६ राग–रागिनियाँ भी अपने ३६ बाजेन के साथ छः छः के यूथ में हर निकुंज में बिराजमान हैं।[४४]

इस प्रकार गिरिराज गोवर्धन पुष्टिमार्ग में भागवद्रूप माना जाता है। ब्रज यात्रा के समय तथा वर्षभर भी भक्तों की भीड़ इनके दर्शन को आती रहती है। भक्तजन सविशेष दूध से गिरिराज गोवर्धन की पूजा–अर्चना करते हैं तथा इनकी परिक्रमा अपनी यथाशक्ति से करते हैं। जैसे पैदल परिक्रमा, दूध की धारा के साथ की हुई परिक्रमा, दण्डौती (दण्डवत्) परिक्रमा आदि। ब्रज यात्रा के दौरान यात्रा लगभग सात दिन गिरिराज गोवर्धन पर रुकती हैं। इस समय में अनेक मनोरथ गिरिराज में श्रीनाथ जी के मुखारविन्द के पास किए जाते हैं। इसके अलावा नाग पंचमी के दिन यहाँ बड़ा मेला लगता है।

''धनि–धनि श्री हरिदास राई।
सानुग सेवा करत सकल विधि,
ताते बल मोहन जिय भाई।
कन्द, मूल, फल, फूल पत्र लै,
सिला सिंहासन रुचिर बनाई।
कोमल तृम गायन चरिबे को,
सीतल जल के झरना बहाँई।
विविध केलि क्रीडत जो सखन संग,
छिन उतरत छिन चड़त हैं धाई।
रामकृष्ण के चरण परस ते,

पुलकित पौहपित रहत सदाँई।
इनकौ भाग कहाँ लगि वरनों,
कोमल कर पर लियो उठाई
प्रेम मुदित यों कहत गोपिका,
इन पर गोविन्द बलि–बलि जाई।''

१३. पुष्टिमार्ग में रासलीला का स्वरूप :-

१. रासलीला का परिचय ::

'रसानां समूहो रास' द्वारा रास को समस्त रसों का समूह कहा गया है। रासलीला पूर्णपुरुषोत्तम भगवान श्री कृष्ण की सबसे मधुर लीला है, जहाँ भक्त (गोपियाँ) और भगवान (परब्रह्म श्री कृष्ण) एक हो जाते हैं। भगवत् प्रेम भक्त को निष्काम बना देता है। भक्त का यह एक निष्ठ भगवत् प्रेम भगवान के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहता है। रास–लीला में यही रसात्मक दिव्य प्रेम प्रकट हुआ है। रासलीला में एक ही रस है श्री कृष्ण, जो गोपियों में रससमूह बनकर उमड़ पड़ता है। श्रीमद् भागवत के व्याख्याकारों ने रास लीला को मोक्ष से भी ऊपर अनन्त, उत्तम, परमानन्दमय फलरूपा माना है। वास्तव में रास आत्माराम का आत्मरमण है। इस रासलीला की इच्छा–कामना तो परम ज्ञानी और महान योगी भी करते हैं। आज भी रासलीला के सम्बन्ध में संदेह, शंका, आक्षेप, जिज्ञासा देखने को मिलती है। इसका मुख्य कारण है रासलीला को सामान्य मानव की कामलीला मानना।

२. रासलीला की व्याख्या ::

श्रीमद् भागवत् के आधार पर अनेक विचारकों ने अपने–अपने ढंग से रासलीला की व्याख्या की है–[४५]

१. जीवात्मा परमात्मा के साथ प्रेम सम्बन्ध के द्वारा कैसे मोक्ष प्राप्त कर सकती है, यही दर्शाने के लिए रासलीला की कथा है।

२. गोपियाँ अन्तःकरण की वृत्तियाँ हैं, जिनका भगवान् की ओर उन्मुख होने से मोक्ष मिलता है, इसकी प्रतीकात्मक कथा ही रास प्रसंग है।

३. भगवत्–शक्ति–रूपा गोपियों को भगवत्संलग्न करके परमानन्द प्राप्ति की कथा ही रासलीला है।

४. विश्वरूप वृत के केन्द्र श्री कृष्ण हैं, प्रकृति परिधि है, जीवात्मारूपी सरल रेखाएँ इस प्राकृत चक्र में पड़कर अपने केन्द्र को भूल गयी हैं। ज्ञानोदय से आत्मविस्मृति दूर होकर जीवात्मा रूप सरल रेखाओं का परिधि को त्याग कर अपने केन्द्र की ओर आकृष्ट होकर गतिशील होना ही रासलीला है, जो नित्य होती रहती है।

५. जीवात्मारूप गोपियों का अपने कारण रूप परमात्मा श्री कृष्ण से मिलन ही रासलीला है। यह स्थूल शरीरों का मिलन नहीं है।

६. गो अर्थात् इन्द्रियाँ, गोप–गोपी अर्थात् इन्द्रियों की रक्षा करने वाले, कृष्ण अर्थात् आत्मा, आत्मा रूपी कृष्ण वंशीध्वनि से गोपियों को अपनी ओर आकृष्ट करते हैं। इन्द्रियाँ–वृत्तियाँ एक मन एक प्राण होकर अन्तरात्मा में मग्न होने के लिए तत्पर होती हैं। अहंकार के नष्ट होते ही पार्थक्य के समस्त बन्धन छिन्न–भिन्न हो जाते हैं और मनोवृत्तियाँ आत्मा में लीन हो जाती हैं तब महारास होने लगता है। आत्मा का पूर्णानन्द में लीन होना ही महारास है, जो कि भारतीय संस्कृति का चरम लक्ष्य है।

७. योग की दृष्टि से भी रास की व्याख्या करने का प्रयास हुआ है। तद्नुसार नाड़ियाँ गोपिका हैं और कुल कुण्डलिनी राधा है। वंशीध्वनि अनाहत नाद है, सहस्त्र दल कमल वृन्दावन है, जहाँ आत्मा और परमात्मा का सुखमय मिलन होता है। यहीं जीवात्मा की सम्पूर्ण शक्तियाँ सुरम्य रास किया करती हैं, ईश्वरीय विभूति के साथ।

८. रास की वैज्ञानिक व्याख्या की गयी है। इसके अनुसार सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में मुख्य केन्द्र के चारों ओर गतिमान रास सतत होता ही रहता है। सौरमण्डल में सूर्य केन्द्र के आकर्षण के कारण ग्रहों और उपग्रहों का मण्डल अपनी विशेष गति से गतिमान रहता है। यह गतिमान परिक्रमा ही रासलीला है।

भक्तों को अपने में तत्पर करने के लिए भगवान ने उनके अनुरूप लीलाएँ की हैं। जब भक्त सम्पूर्ण रूप से भगवतमय हो जाता है, तब ही वह रासलीला का अधिकारी बनता है। 'नित्य हरौ विदधतो यान्ति तन्मयतांहितो'[४६] वल्लभाचार्य का मत है कि रासलीला में भक्त, भगवान् और उनकी लीला सबकुछ निर्गुण, अप्राकृत, दिव्य और अलौकिक है, जो लौकिक वैदिक के सम्बन्ध से रहित रस से पूर्ण पदार्थ हैं। 'रासो नाम रसेनपूर्णः पदार्थोऽन्य सम्बन्ध रहितः।' रासलीला के द्वारा भगवान ने अपने समर्पित भक्तों में अपने पुर्णानन्द की स्थापना की है। रासलीला में यही गूढ़ रसात्मक काम प्रकट होता है। 'रसात्मक स्तुयः कामः सोत्यन्त गूढ एव हि।' यह लीला वैसी ही निर्मल और निर्दोष है जैसे कोई नन्हा शिशु निर्विकार भाव से अपनी परछाई के साथ खेलता है–

'क्रिया सर्वापि सैवात्र पर कामो न विधते।
तासां कामस्य सम्पूर्ति र्निष्कामेनेति तास्तथा ।।
कामेन पूरित कामः संसार जनयेद् स्फुटः।
कामाभावेत पूर्णस्तु निष्कामः स्यात् न संशयः।
अतो न कापि मर्यादा भग्ना मोक्ष फलापि च।
भगवच्चरितं सर्व यतो निष्काममीर्यते।
अतः कामस्य नोद्बोधः ततः शुकवंच स्फुटम् ।।'[४७]

'स्वानन्द्र स्थापनार्थाय लीला भगवता कृता ।।'[४८]

'रेमे रमेशो ब्रजसुन्दरी भिर्यथार्भकः स्वप्रतिबिम्ब विभ्रमः ।।'[४९]

वल्लभाचार्य ने श्रीमद् भागवत् के दशम स्कंध के २६ से ३० तक के पाँचों अध्याय को 'रास पंचाध्यायी' कहा है।[५०] 'भारतीय दर्शन के इतिहास में इस रास

पंचाध्यायी का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। भगवान् श्री कृष्ण और गोपियों के प्रसंग का वर्णन इन पाँच अध्यायों में आया है जो तत्वज्ञान की दृष्टि से बहुत उपयोगी है। भगवान् के वेणुनाद से गोपियों का आकर्षण, गोपीजनों का त्याग और सर्वात्मभाव, उनका गर्व और भगवान् का तिरोधान, गोपीओं का विलाप और दैन्य, भगवान् का प्रादुर्भाव और गोपीजनों के ऊपर अनुग्रह, रासलीला का आरम्भ और भजनानंद का दिव्य अनुभव–ये सब प्रसंग काव्य और तत्वज्ञान की दृष्टि से अत्यन्त मर्मस्पर्शी है।'[५१]

वल्लभाचार्य ने अपनी 'सुबोधिनी' में 'रसात्मकस्तु य काम' कहकर व्याख्यायित किया है कि यह काम लौकिक नहीं अलौकिक है। भगवान श्री कृष्ण अन्तर्यामी हैं, सर्व समर्थ हैं, उन्हें लौकिक संसार का कोई बन्धन नहीं होता है। प्रभु अपनी लीला की इच्छा के कारण मानव देह धारण करते हैं। रास केवल एक नृत्य ही नहीं है, वह एक उत्सव है।[५२]

उत्सव मन का वह आहलाद है जो अपनी मस्ती में सब कुछ भुला देता है।[५३] जो भक्त श्रद्धा–भक्ति से भगवत् लीला का गुणगान करेगा वह परा भक्ति को प्राप्त करेगा। श्रीमद् भागवत् में जिस रास लीला का वर्णन है वह 'सारस्वत कल्प' की रास लीला है– ऐसा वल्लभाचार्य का मत है।

भगवान श्री कृष्ण का प्राकट्य निःस्साधन जीवों के उद्धार के लिए हुआ था।[५४] गोपियाँ जो कि वेद की ऋचाएँ कही गई हैं, उनकी प्रेम लक्षणा भक्ति को देख कर उद्धव जैसे ज्ञानी भी इनके चरणों में गिर कर कहते हैं–

'वंदे नंदब्रजस्त्रीणां पादरेणुमभी क्ष्णशः।
यासां हरि कथोद्गीतां पुनाति भुवन त्रयम्।।'[५५]

भगवान श्री कृष्ण परमात्मा हैं और गोपियाँ जीवात्मा हैं। यह सम्बन्ध काम, क्रोध, स्नेह, भय, एकता और भक्ति का है। इसी का सुन्दर वर्णन रासलीला में देखने को मिलता है।

इस प्रकार प्राचीन तथा अर्वाचीन तत्व–चिंतकों ने रासलीला की उदात्त भावना का विचार किया है। रासलीला की भावना काव्य की दृष्टि से और तत्व ज्ञान की दृष्टि से अत्यन्त भव्य और सुन्दर है। अतएव इसका स्थान साहित्य और तत्वज्ञान के इतिहास में चिरंतन है।

३. रासलीला का आरम्भ और विकास ::

रासलीला के आरम्भ और विकास की गाथा कई पुराणों, ग्रन्थों तथा विद्वानों द्वारा अलग–अलग रूप से की गई है। रास शब्द रस से बना है–'रसौवैसः' अर्थात् भगवान स्वयं रसरूप हैं आनंद रूप हैं। भगवत् गीता में 'रसोऽमप्सु' कहकर रसमय ब्रह्म का साक्षात्कार कराया गया है। हरिवंश पुराण में शरद ऋतु की चाँदनी रात में श्रीकृष्ण ने गोपियों के साथ हल्लीसक नामक नृत्य किया था–ऐसा उल्लेख मिलता है। हल्लीसक गोप समाज का सामाजिक नाच है। श्रीकृष्ण और बलराम जब द्वारिका में थे तब राज दरबार में इन दोनों की लीलाओं को नृत्य द्वारा प्रस्तुत किया गया था जो 'रास' के नाम से सर्वत्र लोक प्रिय हो गया था।[५६] विष्णु पुराण, ब्रह्मपुराण, यज्ञपुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण और गर्ग संहिता में भी रास लीला से सम्बन्धित विस्तृत वर्णन मिलते हैं।[५७] श्रीमद्भागवत पुराण में रासलीला का सविस्तार विवेचन किया गया है। नाट्य शास्त्र में भरतमुनि ने रास के तीन भेद बताए हैं – ताल रासक, दण्ड रासक और मण्डल रासक।[५८]

'ताल रासक नामस्यात् तत्रेधा रास कंस्मृतम्।
दंड रास मे क़ंतु तथा मंडल रासकम्।।'

मध्यकाल में १३ वीं सदी में महाकवि जयदेव ने गीत गोविन्द द्वारा श्री कृष्ण की मधुर भक्ति को जन–जन तक पहुँचाया। गीत गोविन्द में जयदेव ने रास का सुन्दर वर्णन किया है –

'रासे हरिरिह सरस विलासम् तथा विहरति हरिरिह सरस वसंते।
नृत्यति पुवति जनेन समं सखि विरहि जनस्य दुरन्ते।।'[५९]

मध्यकाल में रास के पुनःजन्म का श्रेय मुख्यतः दो विद्वानों को प्राप्त है – महाप्रभु वल्लभाचार्य और स्वामी हरिदास।[६०] इन दोनों विद्वानों ने मथुरा के चतुर्वेदी से आठ ब्राह्मण बालक मांगकर विश्राम घाट, मथुरा में रास का आयोजन किया था। रास करवाने का अधिकार इन विद्वानों ने करहला गाँव ब्राह्मण घमंड देव जी को दिया था। घमंड देव जी ने अपने ही गाँव के दो ब्राह्मण उदयकरण और खेमकरण की सहायता से रास की वर्तमान परम्परा का पुनः आरम्भ किया था। इस बात का उल्लेख राधाकृष्ण रासधारी ने अपनी पुस्तक 'रास–सर्वस्व' में किया है।[६१] आगे चलकर गोड़ीय सम्प्रदाय के नारायण भट्ट जी ने रास के उत्थान और विकास में बड़ा योगदान दिया।[६२] भट्ट जी ने रास का सम्पूर्ण स्वरूप ही बदल डाला। भट्ट जी ने रास को केवल संगीत मात्र ही न रख कर अभिनय का रूप भी प्रदान किया। भट्ट जी ने भी करहला गाँव के दो ब्राह्मण रामराय और कल्याणराय के सहयोग से रास को शास्त्रीय रूप प्रदान किया। इनके साथ नृतक वल्लभ का भी रास की सफलता में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। भट्ट जी ने स्थान–स्थान पर रास मण्डलियाँ स्थापित करवाई। साथ ही रास में श्री कृष्ण की जीवन–लीलाओं को अभिनय रूप में प्रस्तुत करने का श्रेय भी नारायण भट्ट जी को जाता है। इसका वर्णन रास सर्वस्व नामक पुस्तक में इस प्रकार मिलता है–

'कुछ दिन पीछें भए विचार।
प्रकट्यौ भाव जदपि संसार।।
रास बिलास स्वाँमिनी व्यारी।
सखी भाव बिन नहिं अधिकारी।।
प्राकृत दंपति लीला माँही।
परिचारकं कोउ प्रबसति नाँहि।।
रहै पास तिहि अवसर दासी।
जो स्वाँमिनी की कृपा निवासी।।

प्रभु के भक्त अनेक बिधाना।
उज्जल सख्य, दास्य रस–नाना।।
तिनकहँ सुख उपजैं जिहि भाँति।
प्रभु पद में मन रह दिन राती।।'
'अस बिचारी हरि की ललित, लीलँन की अनुहाँरि।
रसिक नाराइन भट्ट नें, ग्रथित कियौ संसार।।
जिहि प्रकार रहि प्रेम दृढ, निखिल भक्ति जिय होइ।
निज–निज रुचि हरिभाव कर, सुख पावें सबकोई।।'[६३]

१५ वीं शती में गुज़रात के प्रसिद्ध भक्त नरसी मेहता द्वारा रचित रास सहस्त्र पदी में भी रासलीला का सुन्दर वर्णन मिलता हैं। १७ वीं सदी में 'आनन्द कन्द चम्पू' में रास का सुन्दर वर्णन मिलता है।[६४]

४. रासलीला के तीन रूप ::

वैष्णव कृष्णोपासक आचार्य गण और भक्तरसिक तथा विद्वानों ने रास के तीन मुख्य रूप बताए हैं–नित्य रास, नैमित्तिक रास और अनुकरणात्मक रास।[६५] 'नित्य रास' परब्रह्म श्री कृष्ण अपनी शक्ति स्वरूपा के साथ अपने गोलोक स्थित वृन्दावन में नित्य निरन्तर करते रहते हैं। 'नैमितिक रास' भगवान् श्री कृष्ण का अवतार रास है जो श्री कृष्ण ने ब्रजांगनाओं के साथ वृन्दावन में किया था। ये दोनों रास (नित्य और नैमितक) अलौकिक हैं इस कारण सामान्य संसारी लोग इसे सहज रूप में नहीं देख सकते। 'अनुकरणात्मक रास' वह रास है जो श्री कृष्ण की लीलाओं पर आधारित है और जिसे सामान्य पात्रों द्वारा किया जाता हैं। इसके भी दो रूप हैं – नित्य रास और लीला रूप में। नित्य रास शरद पूर्णिमा की रात में श्री कृष्ण तथा गोपियों द्वारा किया गया रास है, जिसमें गायन–वादन तथा नृत्य होता है। लीला रुप में श्री कृष्ण की जीवन लीलाओं को अभिनय और संवादों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। जैसे–माखन चोरी, चीर हरण, गो चारण,

कालीया नाग दमन लीला, पूतना वध, महादेव लीला, कंस वध लीला, गोवर्धन धारण लीला आदि।

श्रीमद् भागवत के आधार पर अनेक भक्तों, कवियों ने रास लीला पर अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। नंददास और सोमनाथ ने 'रासपंचाध्यायी' नामक ग्रंथ की अलग रचना की है।

५. रास लीला का वर्तमान रूप ::

ब्रज के कलाकारों ने भागवत से प्रेरणा, अष्टछाप से गायन और अनुभवी कलाकारों से अभिनय सीखकर ब्रजाधिपति भगवान श्रीकृष्ण के जीवन से संबन्धित लीलाओं का सजीव चित्रण रासलीला के रूप में जन–जन तक पहुँचाया है। रास लीला में श्रीकृष्ण, बलराम, सखा, कंस, राधा, सखियाँ आदि का अभिनय करनेवाले पात्र स्वरूप कहलाते हैं। ये बालक मुख्यतः ब्राह्मण होते हैं। ये किशोर बालक कलाकार १२ से २० वर्ष तक की आयु के होते हैं। इन स्वरूपों को सजाने का कार्य श्रृंगारी करता है। श्रृंगारी ही मण्डली के वस्त्रों (वेष भूषा) और आभूषणों की देखरेख करता है। रास मण्डली को चलाने वाल संचालक स्वामी कहलाता है। रास मण्डलियों में श्रीकृष्ण का मुकुट बहुत ही पूजनीय माना जाता है। श्रीकृष्ण स्वरूप बना बालक इस मुकुट को प्रणाम करने के पश्चात् ही इसे पहनता है। सामान्यतः यह मुकुट सलमा–सितारा की एक टोपी पर टिका होता है। इसकी कलगी पर मोर पंख अवश्य लगाया जाता है। कुछ समृद्ध रास मण्डलियाँ सोने–चाँदी का पानी चढ़ा कर भी मुकुट बनवाती हैं। ये मुकुट मथुरा वृन्दावन में विशेष रूप से बनाए जाते हैं। इसके अलावा जब रास मण्डली राज दरबार में रास लीला के लिए जाती है तो उन्हें सभी वस्त्राभूषण राजकोश से दिए जाते हैं, जो कीमती होते हैं। आजकल ऐसा नहीं होता हैं। वल्लभ सम्प्रदायी रासधारियों में श्रीकृष्ण स्वरूप का मुकुट दाँई तरफ झुका रहता है, क्योंकि श्रीनाथ जी का मुकुट भी इसी तरफ झुका हुआ है। ये रास मण्डलियाँ मुख्यतः करहला गाँव की होती

हैं।[६६] रासलीला के मंच पर पीछे एक पर्दा टंगा हुआ रहता है। मंच के मध्य में एक छोटा सिंहासन होता है, जिस पर श्री कृष्ण और राधा बैठे होते हैं। पास ही में गोपिकाओं के लिए चौकियाँ या आजकल कुर्सियाँ रख दी जाती हैं। मंच के आगे नृत्य के लिए स्थान छोड़ दिया जाता है। नृत्य के स्थान के सामने रास मण्डली का संगीत–समाज बैठता है और इनके चारों और भक्त दर्शक बैठते हैं।

जब पर्दा खुलता है तो भगवान ब्रजराज की ब्रजांगनाओं से घिरी झाँकी दिखाई देती है। रास मण्डली का संगीत–समाज सबसे पहले मंगलाचरण गाता है। फिर सखियों द्वारा ब्रजाधिपति और राधा की आरती उतारी जाती है। आरती के बाद प्रशस्तियाँ गाई जाती हैं। फिर सखियाँ युगल स्वरूप को रास मण्डल में पधारने की प्रार्थना करते हैं और आगे रास का शुभारम्भ होता है। रास का नृत्य द्वापर में भगवान द्वारा नाचे गए पवित्र नृत्य का अनुकरण है।[६७] रासलीला का प्रमुख तत्व उसका संगीत पक्ष है।[६८] रासलीला शिल्प में प्राचीन भारत की ताण्डव, लास्य, हल्लीसक, छालिक्य जैसी काल के गर्त में समा चुकी नृत्य विधाएँ आज भी रासलीला में विद्यमान हैं। मध्यकाल में रास लीला में मृदंग, वीणा, बंशी, मुख्चंग, झाँझ, करताल जैसे वाद्यों का प्रयोग होता था। आज इसका स्थान ढोलक, तबला, हारमोनियम, खंजरी जैसे वाद्यों ने ले लिया है। नित्य रासानुकरण में भारतीय संगीत शास्त्र की सार्थक उक्ति 'गीत, वाजों तथा नृत्यं त्रयं संगीत मुच्यते' को साकार मंचित किया जाता है।[६९] रासलीला जिसमें किशोर बालक श्रीकृष्ण की विभिन्न लीलाओं को गायन, वादन, नृत्य, अभिनय और संवादों के साथ मंच पर इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं कि जिसे देख कर दर्शक दिव्य अलौकिक भाव समाधि में जा पहुँचता है और मंत्रमुग्ध हो जाता है। इसी भाव को उपनिषदों में 'रसौ वै सः' कहा गया है। आज कल ब्रज की रास मण्डलियाँ पूरे देश में रासलीला की प्रस्तुति करने जाती हैं। प्रत्येक दिन वे श्री कृष्ण की विभिन्न लीलाएँ दर्शकों के समक्ष प्रस्तुत करती हैं और इस प्रकार के ब्रजाधिपति श्री कृष्ण की मधुर भक्ति को जन–जन तक पहुँचाती हैं।

'नित्य धाम वृंदावन श्याँम।

नित्य रूप राधा ब्रजबाँम।।

नित्य रास, जल नित्य बिहार।

नित्य माँन खंडिताभिसार।।

ब्रह्म रूप एही करतार।

करनहार त्रिभुवन संसार।।

नित्य कुंज सुख, नित्य हिंडोर।

नित्यहिं त्रिंबिंध सँमीर झकोर।।

– सूरदास.

१४. पुष्टिमार्ग में तिलक व तुलसी कण्ठी का महत्व :-

१. तिलक – परिचय व महत्व ::

पुष्टिमार्ग में विधान है कि स्नानादि के पश्चात् चरणामृत लेकर सर्वप्रथम तिलक लगाना चाहिए। हमारी भारतीय संस्कृति में कुंकुम को बहुत पवित्र व मंगलकारी माना गया है। हर शुभ प्रसंगों पर कुंकुम का प्रयोग किया जाता है – जैसे देव पूजन में, यज्ञादि में, शादी आदि कई प्रसंगों में कुंकुम का स्थान ऐतिहासिक व भव्य रहा है। नारद जी के पूछने पर भगवान् श्री वासुदेव ने उर्ध्वपुण्ड्र कुंकुम के बारे में बताया है– [७०]

'श्वेतं पीतं तथा रक्त द्रव्यं तु त्रिविधं स्मृतम्।।

पुण्ड्राणां धारणे विप्रे मयैव प्रकटी कृतम् ।।

तेषु रक्त श्रिया देव्या मत्स्नेहात्प्रकटीकृतम्।।

श्री कुंकुमेति विख्यातं सदा मांगलिकं मुने।।

केवलं मुक्तिदं पुंसाममंगल विनाशनम्।।

हरिद्राति परप्रेम्णा निजार्थोत्र विचार्यताम्।।

प्राणणाच हरेः साक्षात् हरिद्रेयं प्रकीर्तिता ।।

विवाहव्रतबंधादि जन्मयात्रासु युज्यते ।।

द्रव्यं मांगलिकं साक्षात् हारिद्र प्रेमभाजनम् ।।

हरिद्रासंभवं चूर्ण टंकणेन समन्वितम् ।।

भावितं चाम्ल द्रव्येण रक्तत्वमुपयाति हि ।।'

अर्थात् सफेद, पीला और लाल तीन रंग के द्रव्य आते हैं जो ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक करने के प्रयोग में आते हैं। इन तीनों में जो लाल रंग का द्रव्य है उसका प्राकट्य श्रीदेवी (लक्ष्मी) ने किया है। इसे श्री कुंकुम कहा गया है। हे नारद ये श्री कुंकुम सदा–सर्वदा मांगलिक है, मोक्ष देनेवाला है तथा अमंगल का नाश करनेवाला है। इस कुंकुम का एक नाम हारिद्र भी है अर्थात् श्री हरि को प्रिय लगनेवाला, श्री हरि में प्रीति करवाने वाला है। हर तरह के मांगलिक कार्यों में श्री हरि प्रेम के रूप में इस हारिद्र कुंकुम का प्रयोग होता है। जैसे–विवाह, व्रत, जन्म इत्यादि प्रसंगों में इस हारिद्र कुंकुम का उपयोग किया जाता हैं। हल्दी के चूर्ण में, टंकणखार मिलाकर और उसमे खट्टे द्रव्य का पुट देकर लाल रंग लाया जाता है। हारिद्र कुंकुम का स्वीकार सभी वैष्णव सम्प्रदाय करते हैं। तत्वदीप निबन्ध में कहा गया है कि–[७१]

'दण्डकारं ललाटेस्यात् पत्राकारंतु वक्षसि।

वेणुपत्रनिभं वाह् वोरन्यदीपाकृतिः स्मृतम् ।।'

अर्थात् ललाट में दण्डाकृति अर्थात् भगवान के चरण के आकार का वक्ष स्थल अर्थात् हृदय में बन्द कमल के आकार का, दोनों भुजाओं पर बाँस के पत्ते के आकार का तिलक करें तथा अन्य सब स्थानों पर दीपक के आकार का तिलक करें–आदि निर्देश हैं। अतः भगवान प्रसादी केशर, कुंकुम, चन्दन आदि में गोपी चन्दन मिला कर निम्न स्थानों पर द्वादश तिलक करना चाहिए।[७२]

१. ललाट पर तिलक धारण करने का मंत्र–'केशवायनमः केशवं ध्यायामि।'

२. नाभि पर तिलक धारण करने का मंत्र–'नारायणयनमः नारायणंध्यायामि।'

३. हृदय में तिलक धारण करने का मंत्र – 'माधवाय नमः माधवं ध्यायामि।'

४. कण्ठ पर तिलक धारण करने का मंत्र 'गोविन्दाय नमः गोविन्द ध्यायामि।'

५. कमर में सीधे भाग में तिलक धारण करने का मंत्र– 'विष्णवेनमः विष्णुँ ध्यायामि।'

६. सीधे (दाहिने) हाथ पर तिलक धारण करने का मंत्र– 'मधुसूदनायनमः मधुसूदनं ध्यायामि।'

७. सीधे (दाहिने) कान के मूल में तिलक धारण करने का मंत्र– 'त्रिविक्रमायनमः त्रिविक्रमं ध्यायामि।'

८. कमर के बायें भाग में तिलक धारण करने का मंत्र– 'वामनायनमः वामनं ध्यायामि।'

९. बायें हाथ पर तिलक धारण करने का मंत्र– 'श्री धरायनमः श्री धरं ध्यायामि।'

१०. बायें कान के मूल में तिलक धारण करने का मंत्र– 'हर्षीकेशायनमः हषीकेशं ध्यायामि।'

११. पीठ पर तिलक धारण करने का मंत्र– 'पद्मनाभायनमः पद्मनाभं ध्यायामि।'

१२. ग्रीवा के मूल भाग में तिलक धारण करने का मंत्र– 'दामोदरायनमः दामोदरं ध्यायामि।'

इन द्वादश तिलकों के लिए स्कन्ध पुराण में कहा गया है –[७३]

'ब्रह्मन् द्वादश पुण्ड्रानि वैष्णवः सततं धरेत्।

मूर्ध्नि मूलेन मन्त्रेण शेषं द्वादशनाभिः।।'

जो मनुष्य कुंकुम का ऊर्ध्वपुण्ड्र अपने ललाट में लगाता है वह भगवान का प्रिय बनता है उसे मोक्ष प्राप्त होता हैं तथा उसे सभी तरह के फलों (पुरुषार्थ) की प्राप्ति होती हैं जैसे तीर्थो में स्नान करने का फल, यज्ञादि करने का फल इत्यादि।

'ऊर्ध्वपुण्ड्रंतु सर्वेषा न निषिद्धं कदाचन।

धारयेयुः क्षत्रियाधा विष्णु भक्ता भवन्ति ये ।।'[७४]

– पद्म पुराण

पुष्टिमार्ग में भी श्री हरि (श्री नाथ जी) के नित्य सानिध्य की अनुभूति के रूप में तिलक को ललाट पर लगाया जाता है।

२. तुलसी कण्ठी – परिचय व महत्व ::

पुष्टिमार्ग में ब्रह्म सम्बन्ध एवं शरण मंत्र की दीक्षा के समय प्रभु की प्रसादी रूप में गुरु जी द्वारा श्री हरि श्री नाथ जी को अर्पण की हुई तुलसी काष्टमाला वैष्णव को पहनने के लिए दी जाती है। जिसे वैष्णव भगवान् श्री कृष्ण का स्मरण कर तुलसी कण्ठी को अपने गले में पहनते हैं।

'निवेधकेशवेमालां तुलसीकाष्ठा संभवाम्।
वहतेयोनरोभकत्या तस्यनैवास्ति पातकम्।
तुलसी काष्ठर्सभूते माले कृष्णजन प्रिये।
विभर्मित्वामहंकष्ठे कुरुमां कृष्ण वल्लभम्।।'[७५]

स्कन्द पुराण में कहा गया है[७६] कि 'जो तुलसी काष्ठ की माला धारण करता है, पहनता है, वह चाहे कितना ही अपवित्र तथा आचरणहीन हो, मुझे ही प्राप्त होता है। जिनके कण्ठ में तुलसी की माला न हो वे मनुष्य पाप बुद्धि हैं। उनका दिया अन्न विष्टा के समान, जल मूत्र के समान, और अमृत रुधिर के समान हैं।'

'नारद पंचरात्र' में भगवान ने देवर्षि नारद जी से कहा[७७] 'जो तुलसी की कण्ठी को सदैव पहने रहता है, वह पवित्र और सदाचारी न होने पर भी मुझे प्राप्त होता हैं। तुलसी की कण्ठी को पहनकर पुण्य, देव पूजा और पितरों का श्राद्ध करने वाले को करोड़ गुना फल प्राप्त होता है।'

'गरुड़ पुराण'[७८] में लिखा है कि 'तुलसी की माला को कण्ठ में धारण करने वाले भक्त के सब पाप नष्ट होते हैं। मुख से भगवान का कीर्तन करने वाले, ललाट पर तिलक और कण्ठ में तुलसीमाला धारण करनेवाले पुरुष को यम के

दूत छू भी नहीं सकते। महापापों का नाश करने वाली और धर्म, अर्थ, काम की प्रदाता तुलसी की कण्ठी का कभी परित्याग न करें।'

'तुलसी काष्ठमालातु प्रेतराजस्यदूतकाः
दृष्टवा नश्यन्ति दूरेण वातोद्वृतं यथा रजः।'

१५. पुष्टिमार्ग में लीला की अवधारणा :-

१. लीला का अर्थ व व्याख्या ::

सामान्यतः लीला का अर्थ है क्रीड़ा, खेल, रमण। लीला करना भगवान् का स्वभाव है। वे अपने निजधाम गोलोकधाम में नित्य लीला करते हैं तथा द्वापर युग में भगवान श्री कृष्ण अपने समस्त परिकरों के साथ भू-लोक (पृथ्वी) पर अवतरित होते हैं।[७९] वल्लभाचार्य जी ने भागवत की 'सुबोधिनी टीका' में लीला का विवेचन करते हुए कहा है कि-'लीला विलास की इच्छा का ही नाम है। लीला कार्य नहीं, कृति मात्र है। वह सहज व्यापार मात्र है, लीला ऐसी कृति या व्यापार है जिससें बाहर कोई कार्य उत्पन्न नहीं होता। यदि उसमें कोई कार्य होता हुआ दिखलाई भी देता हो तो वह अभिप्रेत नहीं होता, उसमें कर्ता का कोई अभिप्राय नहीं होता। इसमें कर्ता का कोई प्रयास भी नहीं होता। जब अन्तःकरण आनन्द से परिपूर्ण हो जाता है तो उस उल्लास से कार्योत्पत्ति सदृश कोई क्रिया उत्पन्न होती है, यही लीला है।[८०] लीला का कोई प्रयोजन नहीं होता है लीला का प्रयोजन केवल लीला ही है, लीला का आनंद अपने आप में अपना प्रयोजन है।'[८१]

वल्लभ सम्प्रदाय में लीला के महत्व को स्वीकारते हुए कहा जाता है कि भगवत् प्रेम ही सब कुछ है।

'भगवान् के प्रति परम प्रेम तथा एकान्त प्रेम ही भक्ति है। लीला उसी प्रेम का प्रपंच है।' वल्लभाचार्य ने लीला का महात्म्य अपने ब्रह्मसूत्र में इस प्रकार बताया है-'लीला विशिष्टमेवं शुद्ध परमं ब्रह्म, न कदाचित् तद्रहितमित्यर्थः ते च

(लीलायाः) नित्यत्वम्।'[८२] वल्लभीय भक्तों के लिए भजनानंद मुक्ति से भी बढ़कर है। लीला में प्रवेश ही उनके लिए परम मुक्ति है, यही उनके जीवन का सर्वोच्च और सर्वोत्कृष्ट लक्ष्य है–

'लीला एव कैवल्य जीवानां मुक्ति रूप तत्र प्रवेशः परमा मुक्तिरिति।'

भगवान श्री कृष्ण पृथ्वी पर अवतार क्यों लेते हैं इसका उत्तर श्रीमद् भागवत में दिया गया है – 'अद्वय तथा निर्गुण भगवान का प्रकटीकरण इस जगत् में मनुष्यों को मुक्ति प्रदान करने के लिए ही होता है। मनुष्यों को साधन निरपेक्ष मुक्ति का दान ही भगवान के प्राकट्य का प्रयोजन है। इसका अभिप्राय है कि बिना किसी साधन की अपेक्षा रखते हुए भी भगवान् साधक को स्वतः अपनी लीला के विलास से अपने अनुग्रह से मुक्ति प्रदान करते हैं। भगवान् की यह लीला ही ठहरी। ज्यों ही जीव भगवान् के शरणागत हो जाता है और शरण मंत्र का उच्चारण करता है, भगवान की भक्ति का उदय हो जाता है और फलस्वरूप भगवान् श्री कृष्ण की विमल दया की धारा उस साधक के ऊपर झरने लगती है। यही पुष्टि का रहस्य है।'[८३]

श्रीमद् भागवत में भगवान श्री कृष्ण की लीलाओं को सर्वोत्तम महत्व प्रदान किया गया है, जिसके अनुसार ईश्वर अपनी स्वेच्छा से लीला करता है। 'लीला विद्धतः स्वैर भीश्वरस्यात्मा यथा।'[८४] ब्रह्मसूत्र के अनुसार भगवान् लोकवत लीला करते हैं – 'लोकवतु लीला कैवल्यम्।'[८५] परवर्ती वैष्णव सम्प्रदायों का विश्वास है कि भगवान भक्तों पर अनुग्रह करने की इच्छा से अपनी लीला का विस्तार करने के लिए अवतार लेते हैं–प्रकट होते हैं।[८६] भगवान की लीला उन्हीं के समान नित्य और अनंत है।

२. **लीला के तीन भेद हैं ::** नित्य लीला, सृष्टि लीला, अवतार लीला।

नित्य लीला –

वल्लभाचार्य के अनुसार शुद्ध पर ब्रह्म लीला विशिष्ट है। लीला करना उसका नित्य सहज स्वभाव है। वह कभी अपने इस लीला वैशिष्ट्य के बिना नहीं रहता। इसी कारण लीला भी नित्य है।[87] पूर्ण पुरुषोत्तम सच्चिदानंद रसात्मक भगवान श्री कृष्ण अपने गोलोकधाम में नित्य लीला में रमण करते हैं। भगवान के सभी लीला सहचर इसमें उनके साथ विराजमान रहते हैं। गोलोक में तो भगवान अपने अनंत प्रकाशों के साथ नित्य क्रिड़ा करते हैं और उसी में से किसी एक प्रकाश के द्वारा अपने सहचरों के साथ ब्रज वृन्दावन में प्रकट हो जाते हैं।[88] वेदों में गोलोकधाम को विष्णु का परम पद कहा गया है तो पुराणों में व्यापि वैकुंठ कहा गया है–यहीं गोलोकधाम में भगवान् श्री कृष्ण अपनी शक्ति स्वरूपाओं के साथ नित्य लीला करते हैं। नित्य लीला भगवान का स्थाई (शाश्वत्) रूप है, अलौकिक रूप है इसे सामान्य मनुष्य के लिए समझ पाना मुश्किल है।

सृष्टि लीला –

गोलोकधाम में नित्य लीला करते–करते जब सच्चिदानंद भगवान् की इच्छा होती है कि वे एक से अनेक रूप, गुण और नाम धारण कर रमण करें तो वे जगत् के रूप में परिणत (परिवर्तित) होकर असंख्य रूप, गुण, नाम धारण करके लीला करने लगते हैं। यह भगवान का बहिरमण कहलाता है, और पुनः जब परब्रह्म की इच्छा होती है तो वे अपने इसी असंख्य रूप, गुण और नाम को समेट कर जगत् को अपने में ही लीन कर लेते हैं इसे परब्रह्म का आन्तर रमण कहते हैं।

गोलोक भगवान् का आत्मरमण है जो नित्य होता है। जगत् भगवान का ब्राह्य रमण है तथा प्रलय भगवान् का आन्तर रमण है।[89]

अवतार लीला –

जब भगवान् श्री कृष्ण अपने भक्तों पर कृपा कर उन्हें अपने पूर्ण आनंद का दान देना चाहते हैं तब वे भूतल पर अवतरित होते हैं। यही अवतार लीला कहलाती है जो मनुष्य रूप में होती है। अवतार लीला में सारस्वत कल्प की लीला मुख्य मानी जाती है श्रीमद् भागवत् सारस्वत् कल्प की लीला का प्रतिपादन करता

है। इस लिये उसमें जिन कृष्ण का प्रादुर्भाव बतलाया हैं वे पूर्ण रूप वाले थे। कृष्णस्तु भगवान् स्वयं का यह भागवतोक्त वचन इस बात की पुष्टि करता है। इसीलिए पुष्टिमार्ग में श्रीमद् भागवत को मुख्य प्रमाण मानते हुए उनकी लीलाओं को अवतार लीला रूप से ग्रहण किया है 'कल्पं सारस्वतं प्राप्य ब्रजे गोव्यो भविष्यथ'। बृहद्वामन पुराण के वचन अनुसार भगवान श्री कृष्ण ने वेद की श्रुतिओं को कहा सारस्वत् कल्प में तुम ब्रज में गोपी होंगीं और तब मैं वहाँ प्राद्भूत होकर तुमको मेरी लीलाओं का अनुभव कराउँगा–इस प्रकार वर दिया था। इसीलिए नित्यलीलास्थ निर्गुण परब्रह्म श्री कृष्ण इन श्रुतिओं के निमित्त ब्रज में सारस्वत कल्प के द्वापरयुग में पूर्ण रूप से अवतीर्ण हुए हैं। पद्मपुराण के अनुसार भगवान श्री रामचंद्र जी से दण्डकारण्यवासी सोलह हजार ऋषिओंने भी यही वर मांगा था कि आप हमारा स्त्री भाव से अंगीकार कीजिए। तब भगवान श्री रामचन्द्र जी ने ब्रज में श्री कृष्ण रूप से मैं तुम्हारा अंगीकार करूंगा इस प्रकार वर दिया था। ये श्रुतियाँ स्मृति रूप थीं। ये गौड़ देश में कुमारिकाएँ हुई, जिनको श्री नंदराय जी खरीद कर ब्रज में लाये थे। अतएव श्रुति स्मृतिरूप ब्रज गोपिका एवं कुमारिकाओं के लिए भगवान श्री कृष्ण ब्रज में साक्षात् रूप से प्रकट हुए और उनके साथ जो लीलाएँ की वे अवतार लीला कही जाती हैं।[९०]

वल्लभाचार्य की यह सृदृढ़ मान्यता है कि श्री कृष्ण अवतार नहीं, अपितु अवतारी हैं। वे मूल स्वरूप हैं। उन्हीं से ब्रह्म के गुणावतार, अंशावतार, कालावतार प्रकट होते हैं। श्री कृष्ण के साथ उनका अलौकिक–दिव्य गोलोक धाम भी भूतल पर प्रकट होता है। ब्रज वृन्दावन, गोपी–गोप, गौ, वन–उपवन, यमुना नदी, गोवर्धन पर्वत आदि। वल्लभाचार्य मानते हैं कि ब्रज वृन्दावन के प्रत्येक वृक्ष में वेणुधारी श्रीकृष्ण रहते हैं। हर पत्ते–पत्ते में चतुर्भुज श्री कृष्ण स्थित हैं। यहाँ के धूलि–कण पवित्र हैं और रज से जल पवित्र हैं। यह लीला अभक्तों को दिखाई नहीं देती, अलक्ष्य है किन्तु भक्तों को आज भी दृष्टिगोचर होती है सहज लक्ष्य है–

'वृक्षे–वृक्षे वेणुधारी पत्रे–पत्रे चतुर्भुजः यत्र वृन्दावने तत्र लक्ष्या लक्ष्यकथा कुतः ।। जलादपि रजः पुण्य रजसोऽपि जलं वरं।'[९१] भगवान् श्री कृष्ण की ब्रज लीलाओं का सुख केवल ब्रजांगनाओं को प्राप्त हुआ है। इन ब्रज सुंदरियों को जो सुख मिला है उसे वैकुंठ धामस्थ लक्ष्मी भी पाना चाहती हैं। इसीलिए भगवान् श्री कृष्ण ने कहा है –

'मत्प्राणा मत्प्रिसा यूयं सर्वे वै ब्रजवासिनः।

हृदयं मेऽस्ति युष्मासु देहोऽन्यत्र विलक्ष्यते।।'[९२]

समस्त ब्रजवासी मेरे प्राणों के समान प्रिय हैं, मेरा हृदय ब्रजवासियों में ही अवस्थित रहता है। देह अन्यत्र दिखाई देती है। ब्रज वृन्दावन से चले जाने के पश्चात् भी भगवान श्री कृष्ण को ब्रज की याद सताती है इसलिए वे उद्धव जी से कहते हैं 'ऊधो मोहि ब्रज विसरत नांही। वृन्दावन गोकुल वन उपवन सधन कुंज की छांही।।'[९३] जब उद्धव जी ज्ञान का संदेश देने ब्रज में आते हैं तो गोपियों की कृष्ण भक्ति देख कर विहल (व्याकुल) हो जाते हैं। वे गोपियों की चरण रज को भी वन्दन करते हैं।[९४] तथा स्वयं ब्रज–वृन्दावन के तृण–गुल्म लता बनना चाहते हैं [९५] ताकि वे इस कृष्ण प्रेम भक्ति का रसानंद प्राप्त कर सके। सो ऐसी है ब्रज की भगवान श्री कृष्ण की अवतार लीला। भक्त भगवान की इस प्रकार की अवतार लीलाओं का स्मरण, मनन, श्रवण, कीर्तन कर जीव भगवत परायण हो जाता है और अपनी इस भक्ति द्वारा मुक्ति की ओर आगे बढ़ता है। श्रीमद् भागवत में भगवान श्री कृष्ण की दश विविध लीलाओं का वर्णन है–सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, ऊति,मन्वन्तर, ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति और आश्रय।

अवतार लीला के तीन भेद हैं– ब्रज–वृन्दावन लीला, मथुरा लीला, द्वारिका लीला।[९६]

ब्रज लीला शुद्ध पुष्टि स्वरूप है, अन्य दो लीलाएँ मर्यादा–पुष्टि रूप हैं। ब्रज लीला के भक्त निःसाधन जीव हैं। उनके साथ भगवान श्री कृष्ण ने लीला कर यह सिद्धान्त प्रकट किया है कि जो भी मुझ में एक निष्ठ श्रद्धा–भक्ति–प्रेम रखता है

वह कैसा भी पापी, दुराचारी हो, मैं उसका स्वीकार कर उसे मुक्त करता हूँ। पुष्टिमार्ग में भी प्रभु स्वयं भक्त पर अनुग्रह कर कृपा कर उसका उद्धार करते हैं। ब्रज लीला मानव सुलभ भावों पर आधारित है जो गोलोक धाम की अलौकिक दिव्य लीला से भीं अधिक उत्तम है। वृंदावन इस ब्रज लीला का मुख्य क्षेत्र है, मथुरा और द्वारका इसके सहकारी क्षेत्र हैं। वासुदेव और देवकी भगवान श्री कृष्ण के वैकुंठधाम के माता पिता हैं तो नंद और यशोदा इस ब्रज लीलाधाम के माता–पिता हैं। विद्वानों का मत है कि भगवान श्री कृष्ण वृंदावन में पूर्णतम, मथुरा में पूर्णतर और द्वारका में पूर्ण रूप में बिराजमान होते हैं।

पुष्टिमार्ग में इस अवतार लीला की एक मुख्य विशेषता यह है कि जिसे ब्रज लीला में अधिकार प्राप्त नहीं है वह प्राणी भी गुरू आचार्य की कृपा से ब्रज लीला का रसास्वादन कर, कान्ता भाव की भक्ति करता हुआ साक्षात् भगवान श्री कृष्ण के गोलोक–ब्रज–वृंदावन को प्राप्त करता है अर्थात् जगत्–संसार के समस्त प्रपंचों से मुक्ति प्राप्त करता है–

'मुक्ति कहै गोपाल सों मेरी मुक्ति बताय।
ब्रजरज उड़ ऊपर परै, मुक्ति मुक्त है जाय।।'

१६. पुष्टिमार्ग में भगवान् श्री कृष्ण-श्री नाथ जी का स्वरूप :-

पुष्टिमार्ग में भगवान श्री कृष्ण को पूर्णब्रह्म माना गया है। वल्लभाचार्य का कथन है–

'सर्वदा सर्वभावेन भजनीयों ब्रजाधिपः।
सवस्यायमेव धर्मोहि नान्यः क्वापि कदाचना।।'[१७]

अर्थात् कृष्ण सेवा रूप, कृष्ण कथा रूप, कृष्ण कीर्तन रूप, कृष्ण गुण गान रूप इस भावात्मक पुष्टिमार्ग में परम तत्व भगवान् श्रीनाथ जी के रूप में बिराजमान है। आचार्यों ने श्रीनाथ जी की प्रतिष्ठा ईश्वर रूप में की है। श्रीनाथ जी के मंदिर के शिखर, चक्र और सप्त ध्वजाएँ इसी बात के सूचक हैं। श्रीमद् भागवत् में भी

कहा गया है–'कृष्णस्तु भगवान्स्वयम्' अर्थात् श्री कृष्ण ही स्वयं भगवान हैं। श्रीमद् भागवत् में भगवान् शब्द् की व्याख्या इस प्रकार दी गई है–

'ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः
ज्ञानवैराग्य योश्चैव षण्णां भग इतीरणा ।।
उत्पतिः प्रलयश्चैव भूतानामगतिं गतिम्
वेति विधामविधां च स वाच्यों भगवानिति ।।'[१८]

अर्थात् जो सारे ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य, उत्पति, प्रलय, प्राणियों की गति, अगति, विद्या और अविद्या का ज्ञाता हो, वही भगवान होता है। ये सभी गुण भगवान् श्री कृष्ण में विद्यमान हैं इसलिए उन्हें भगवान कहा गया है।

१. श्री नाथ जी का प्राकट्य ::

श्री नाथ जी का प्राकट्य मथुरा के समीप गिरिराज गोवर्धन की कंदरा (गुफा) में स्वतः हुआ था। वि.सं. १४६६ श्रावण वदी तृतीया को सर्व प्रथम ऊर्ध्व भुजा का प्राकट्य हुआ था। उसी संवत की नाग पंचमी को ब्रजवासियों को इस ऊर्ध्व भुजा का दर्शन हुआ था। ठीक ६९ वर्ष पश्चात् वि.सं. १५३५ वैशाख कृष्ण एकादशी को श्रीनाथ जी के मुखारविन्द का प्राकट्य हुआ था। इस अवसर पर ब्रज में सर्वत्र अलौकिक आनंद छा गया था इसी संदर्भ में कुम्भनदास जी का ये पद है–

'नंद महरि के पूत भयो।
बडी वेस जायो है ढोटा।
निरखत सब संताप गयो।
घर घर ते सब चली जुवति जन,
अंग अंग सुभग सिंगार किये।
कुम्भनदास गिरिधर के प्रकटे,
नाचत सब मिल मुदित हिए।।'[११]

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि इसी दिन अर्थात् वि.सं. १५६५ वैशाख कृष्ण एकादशी के दिन पुष्टिमार्ग के प्रवर्तक वल्लभाचार्य जी का भी जन्म मध्यप्रदेश के चम्पारण्य नामक स्थान में हुआ था। श्रीमद् भागवत् में श्री नाथ जी के विषय में कहा है–

'गोपैर्मखे प्रतिहते ब्रज विप्लवाय
देवेभिवर्षति पशुन्कृपया रिरक्षुः।
धर्तोच्छिलीन्ध्रमिव सप्त दिनानि–
सप्त वर्षो मही ध्रमनघैक करेण लीलम्।'

अर्थात् गोपों ने जिस समय इन्द्र को यज्ञ देना बन्द कर दिया उस समय इन्द्र ने कुपित हो ब्रज को बहा देने के लिए ब्रज पर घोर वर्षा की थी। उस समय भगवान् श्री कृष्ण ने, सात वर्ष के सांवले ने, सात दिन पर्यन्त अपनी एक ऊँगली पर श्री गिरिराज को धारण कर ब्रजजनों की रक्षा की थी। उस समय का स्वरूप ही इस समय श्री नाथ जी के स्वरूप में बिराजमान है।

गर्ग संहिता के गिरिराज खण्ड में श्री नाथ जी के बारे में इस प्रकार लिखा है–[१००]

येन रूपण कृष्णेन, धृतो गोवर्द्ध नो गिरिः।
तद्रुयं विधते तत्र राजन् श्रृंड गारमण्डले।। १।।
अब्दाश्चतुः सहस्त्राणि तथा पंच शातानि च।
गतास्तत्र कलेरादौ क्षेत्रे श्रृंड गारमण्डले।। २।।
गिरिराज गुहामध्यात्सर्वेषा पश्चतां नृप।
स्वतः सिद्ध च तद्रुप हरेः प्रादुर्भविष्यति।। ३।।
श्री नाथ देव दमन तं वदिष्यन्ति सज्जनाः।
गिरिराज गिरौ राजन् सदा लीला करोति यः।। ४।।
ये करिष्यन्ति नेत्राभ्या तस्य रुपस्य दर्शनम्।
ते कृतार्था भविष्यन्ति श्री शेलेन्द्रे कलौ जना।। ५।।
जगन्नाथों रङ्गनाथों द्वारकानाथ एव च।

बदरीनाथ श्चतुष्कोऐ भारतस्यापि वर्तते।। ६ ।।
मध्ये गोवर्द्धनस्यापि नाथोडय वर्तते नृप।
पवित्रे भारत वर्षे पंचनाथाः सुरेश्वराः ।। ७ ।।
सद्धर्ममण्डापस्तम्भा आर्तत्राणपरायणाः।
तेषां तु दर्शन कृत्वा नरो नारायणो भवेतः ।। ८ ।।
चतुर्णा भुवि नाथानां कृत्वा यात्रा नरः सुधी।
न पश्ये देवदमन सा यात्रा निष्फला भवेत।। ९ ।।
श्री नाथ देव दमन पश्येद्गोवर्द्धने गिरौ।
चतुर्णा भवि नाथानां यात्रा याश्च फलं लभेत्।। १० ।।

२. श्री नाथ जी का स्वरूप ::

श्री नाथ जी का स्वरूप श्याम वर्ण का है। आप अपने बाएँ हस्त से अपने भक्तों को अपनी ओर बुला रहे हैं तथा दाएँ हस्त से भक्तों के हृदयों को मुट्ठी में ले लिया है। आप अपनी निकुंज में ठाढ़े हैं अतः आपकी पिठिका चौखूँटी (चौरस) है। आपके दोनों चरणाविन्द नृत्य की मुद्रा में हैं और आपकी दृष्टि सम्मुख है। श्री नाथ जी के अद्भुत स्वरूप का वर्णन द्वारकेश महाराज ने इस प्रकार किया है–
१०१

'देख्यो री मैं श्याम स्वरूप।
वामभुजा ऊँचे कर गिरिधर,
दक्षिण कर कटि धरत अनूप।। १ ।।
मुष्टिका बाँध अंगुष्ट दिखावत,
सम्मुख दृष्टि सुहाई।
चरन कमल युगल सम धरके,
कुंज द्वारा मन भाई।। २ ।।
अति रहस्य निकुंज की लीला,

हृदय सुमिरन कीजे।

द्वारकेश मन वचन अगोचर,

चरन कमल चित दीजे'।। ३ ।।

वर्तमान में श्रीनाथ जी का स्वरूप राजस्थान के नाथद्वारा नगर में विराजमान है। श्रीनाथ जी के अलावा पुष्टिमार्ग के अन्य प्रधान सेव्य स्वरूप इस प्रकार हैं–

स्वरूप		**बिराजने का स्थान**
श्री नवनीत प्रिया जी	–	नाथद्वारा
श्री मथुरा नाथ जी	–	कोटा
श्री विट्ठलनाथ जी	–	नाथद्वारा
श्री द्वारका नाथ जी	–	कांकरोली
श्री गोकुल नाथ जी	–	गोकुल
श्री गोकुलचन्द्रमा जी	–	कामवन
श्री बालकृष्ण जी	–	सूरत
श्री मुकुन्दराय जी	–	काशी
श्री कल्याणराय जी	–	बड़ौदा
श्री मदन मोहन जी	–	कामवन

(नोटः श्री नाथ जी का विस्तृत वर्णन हमें पुष्टिमार्गीय वार्ता साहित्य में प्राप्त होता है–श्री नाथ जी की प्राकट्य वार्ता, महाप्रभु जी की वार्ता आदि में।)

श्री कृष्ण के पाँच नाथवाची स्वरूपों की भारत में प्रतिष्ठा की गई थी। उनमें से जगन्नाथ पूर्व दिशा में, रंगनाथ दक्षिण दिशा में, द्वारकानाथ पश्चिम दिशा में और बदरीनाथ उत्तर दिशा में प्रतिष्ठित हैं। मध्यवर्ती गोवर्धन क्षेत्र में श्रीनाथ जी की प्रतिष्ठा हुई। उनका एक नाम 'देवदमन' भी हैं। सुधीजन चारों दिशाओं के नाथों के दर्शन करने पर भी श्री नाथ का दर्शन किए बिना अपनी यात्रा की सफलता नहीं मानते हैं।[१०२]

१७. पुष्टिमार्गीय देवालयों में प्रतिष्ठित सप्त ध्वजा जी :-

१. ध्वजा जी : परिचय व महत्व ::

पुष्टिमार्ग में श्री नाथ जी के मंदिरों के शिखर पर मंगल कलश, सुदर्शन चक्र एवं सप्तरंगी ध्वजा पुष्ट की जाती है। शास्त्रों का वचन हैं–

'यथा विधूते वातेन ध्वजः प्रासाद मस्तके।
तथा कर्ता त्यजेत् पापं सप्तजन्मार्जितं क्षणात्।।'[१०३]

किसी भी प्रासाद के शिखर पर आरोपित ध्वजा जिस क्षण वायु वेग के साथ लहराता है, उसी क्षण कर्ता के पापों का निरसन होने लगता है। ध्वजा सात जन्मों के कलेषों का विनाश करनेवाली मानी गई है।

भगवान श्रीनाथ जी के मंदिर की सप्त ध्वजा के सात रंग सूर्यकिरणों की सप्तरंगी आभा को प्रस्तुत करते हैं। इस ध्वजा द्वारा न केवल श्रीनाथ जी का माहात्म्य प्रकाशित होता है, अपितु पुष्टि–सम्प्रदाय की सम्पूर्ण सृष्टि का श्रेय एवं प्रेय भी इसी ध्वजा द्वारा पुष्ट होते हैं। इस ध्वजा में पुष्टि सम्प्रदाय के सात स्वरूपों का ऐश्वर्य तथा सम्पूर्ण पुष्टि–सृष्टि के कल्याण का भाव निहित रहता है। सामान्य जन मानस में भी ध्वजा के यशोगान द्वारा पुष्टि सम्प्रदाय का यश बढ़ता रहता है।

ध्वजा का एक–एक तन्तु कर्ता को स्वर्गारोहण का दिव्य सन्देश देता है। यह असुर–यातुधान–पिशाच–उरग–राक्षसों के द्वारा उद्भूत प्रत्यवायों का विनाश करनेवाली मानी जाती है। अतः देव मंदिरों को ध्वजा से सुसज्जित रखा जाता है–

'असुरा यातुधानश्च पिशोचोरग राक्षसाः।
ध्वज हीने तु प्रासादे वस्तुभिच्छन्ति नित्यदा।।
तस्माद् ध्वज विहीनं तु न कुर्यात सुरमन्दिरम्।
यावन्तस्तन्तंस्तस्य ध्वजस्य वर वर्णिनि।
तावद् वर्षसहस्त्राणी कर्ता स्वर्गे महीपते।'[१०४]

सर्वदेव प्रतिष्ठा प्रकाश में कहा गया है कि–

'मान स्तमभो भवेददेवो ध्वजो देवः सदोच्यते।

तयोः प्रतिष्ठा कथिता ड़श्वमेध फल दायिनी।।' [१०५]

पुष्टिमार्ग के आचार्य गुसाँई विट्ठलनाथ जी पर छः मास तक श्रीनाथ जी के दर्शन करने पर प्रतिबन्ध लगाया गया था। तब वे मंदिर की ध्वजा में ही श्रीनाथ जी प्रभु के स्वरूप के दर्शन करते थे।

'दीठो कलश एक अपार

सकल ब्रज को सार यामे मृग रिपुन की वार

धरयों चक्र संवारि तापर वक्र जाकी धार

पीत ध्वज फहरात तापर सूर वलि बलिहार।' – सूरदास

२. सात अंक का लगाव ::

वैष्णव भक्तों में सात के अंक के साथ विशेष लगाव देखने को मिलता है–

१. भगवान श्रीकृष्ण ने सात वर्ष की आयु में गोवर्धन धारण किया था। इन्द्र का दम्भ भंग कर गोप भक्तों की रक्षा की थी।
२. पूरे सात दिनों तक भगवान श्री कृष्ण ने गिरिराज पर्वत को धारण किया था।
३. भगवान श्रीकृष्ण की मुरली में भी सात छिद्र हैं।
४. संगीत के मुख्य स्वर भी सात हैं।
५. राजा परीक्षित ने सात दिन में श्रीमद् भागवत सुना था तथा मोक्ष प्राप्त किया था।
६. महाप्रभु वल्लभाचार्य ने भगवद् स्वरूप श्रीमद् भागवत का अर्थ समझाया है वह भी सात प्रकार का है– स्कंधार्थ, प्रकरणार्थ, अध्यायार्थ (भागवतार्थ निबन्ध) और वाक्यार्थ, पदार्थ, शब्दार्थ और अक्षरार्थ (श्री सुबोधिनी जी)।
७. आचार्य गुसाँई विट्ठलनाथ जी के सात बालक हैं। पुष्टिमार्ग के प्रमुख सात पीठ है तथा सात निधि स्वरूप हैं।
८. भगवान श्रीनाथ जी के पाटोत्सव भी सात हैं।
९. सप्ताह के दिन सात हैं तथा वार भी सात हैं।

३. पुष्टिमार्ग की सप्त रंगी ध्वजा का वर्णन ::

पुष्टि सम्प्रदाय की सप्त रंगी ध्वजा जी का स्वरूप वैष्णवों के लिए कुछ इस प्रकार है।

१. पहली ध्वजा जी – श्री नाथ जी की भावना से श्याम रंग की है।
२. दूसरी ध्वजा जी – श्री स्वामिनी जी की भावना से पीले रंग की है।
३. तीसरी ध्वजा जी – श्री यमुना जी की भावना से श्याम रंग की है।
४. चौथी ध्वजा जी – श्री चन्द्रावली जी के भाव से श्वेत (सफेद) रंग की है।
५. पाँचवी ध्वजा जी – श्री राधा सहचरी जी के भाव से नीली (हरित) रंग की है।
६. छठी ध्वजा जी – श्री गिरिराज जी के भाव से जामुनी रंग की है।
७. सातवीं ध्वजा जी – श्री गोपिजनों के भाव से गुलाबी रंग की है।

४. ध्वजा जी के तीन स्वरूप ::

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान श्री कृष्णके तीन स्वरूप माने गए हैं उसी प्रकार श्रीनाथ जी के मंदिर की ध्वजा के भी तीन स्वरूप माने गए हैं–आधिभौतिक, आध्यात्मिक और आधिदैविक।

ध्वजा जी का आधिभौतिक स्वरूप–

विश्व में प्रत्येक राष्ट्र का अपना राष्ट्र ध्वज है, जो उस राष्ट्र का गौरव है। इस राष्ट्र ध्वज का सम्मान राष्ट्रपति से लेकर सामान्य जन–समुदाय तक करता है। अपने राष्ट्र ध्वज की रक्षा में राष्ट्र भक्त अपनी जान तक न्यौछावर कर देते हैं। इसी प्रकार श्रीनाथ जी के मंदिरों में लगनेवाली ध्वजा पुष्टि सम्प्रदाय के गौरव का प्रतीक है, यह धर्म ध्वजा भी है, जो सभी भक्तों के लिए पवित्र तथा पूजनीय है। भक्तगण ध्वजा में अपने प्रभु के स्वरूप को देखते हैं, यही ध्वजा का आधिभौतिक स्वरूप है।

ध्वजा जी का आध्यात्मिक स्वरूप–

भारतीय संस्कृति में नदियों को भी पूजनीय माना गया है। जैसे गंगा तथा यमुना के जलपान से ही मनुष्य के समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। इन नदियों में भगवान का आध्यात्मिक स्वरूप देखने को मिलता है। भक्त गण इन नदियों को भगवान के रूप, गुण आदि से सम्पन्न मानते हैं। इसी प्रकार मंदिर की ध्वजा में भक्तगण स्वयं प्रभु श्रीनाथ जी के प्रत्यक्ष दर्शन करते हैं तथा ध्वजा प्रभु के रूप, गुण, लीला आदि से सम्पन्न मानी जाती है। यही ध्वजा जी का आध्यात्मिक स्वरूप है।

ध्वजा जी का आधिदैविक स्वरूप–

भगवान श्रीनाथ जी स्वयं ध्वजा जी के आधिदैविक स्वरूप हैं। वैष्णव भक्त ध्वजा जी को साक्षात् श्रीनाथ जी का स्वरूप मानते हैं और इसी भाव से ध्वजा जी को भोग पधराते हैं, आरती उतारते हैं, भेंट धरते हैं और परिक्रमा भी करते हैं। ऐसा माना जाता है कि ध्वजा चढ़ाने वाले के वंश की पहले की पचास और पीछे की पचास तथा एक अपनी, अर्थात् एक सौ एक पीढ़ी के व्यक्तियों की, यह ध्वजा नरक समुद्र से उद्धार कर देती है।[१०६] इस प्रकार वैष्णव भक्त ध्वजा जी में ही अपने प्रभु का स्वरूप देखते हैं यही ध्वजा जी का आधिदैविक स्वरूप है।

ये सप्तरंगी ध्वजा पुष्टिमार्ग के सिद्धान्त के प्रमुख सात ध्येय–सेवा, सादगी, संयम, सफाई, साधना, संवेदनशीलता और सुन्दरता का सन्देश जन–जन में फैला रही है। भक्त मानते हैं कि ध्वजा दूर से ही देवालय के तथा प्रभु के स्वरूप के दर्शन करवा देती है। देवालयों–मंदिरों में ध्वज का स्थापन बड़ा लाभपूर्ण माना जाता है। इसके कारण अकाल मृत्यु, अलक्ष्मी, पाप, रोग, विपरीत आचरणों आदि का विनाश होता हैं तथा उस स्थल विशेष पर मेघ वर्षा होती है तथा वह स्थान सुभिक्ष होता है, प्रशासकों की भी विजय होती है, गाय पयस्विनी होती है और समस्त भू–मण्डल में शान्ति की स्थापना होती है–

'यत्रैतत् क्रियते राष्ट्रे ध्वज यष्टि निवेक्षनम्।
नाकाल मृत्युस्तत्रास्ति नाडलक्ष्मीः पापकृत स्वपि।।

नोपसर्गभयं तत्र नापि रोगा न विभ्रमः।
विपरीताणि नो तत्र नराणामपि भूपसाम्।।
स्वकाल वर्षी पर्जण्यः सुभिक्षं विजयी नृपः।
शान्तानि सर्व भूतानि पयास्विन्यः पयोभृतः।।'[१०७]

१८. पुष्टिमार्ग की प्राचीनता :-

वल्लभाचार्य ने अपने नवीन मार्ग पुष्टिमार्ग में भगवान के अनुग्रह को ही मुक्ति का एक मात्र साधन माना है। वल्लभाचार्य का ग्रंथ सुबोधिनी 'श्रीमद् भागवत' के गूढ़ रहस्यों को उद्घाटित करता है। वल्लभाचार्य ने एक ही श्लोक में पुष्टिमार्ग का सार बताया है–

'एकं शास्त्र देवकी पुत्र गींत, ऐको देवो–देवकी पुत्र एव।
मन्त्रोडप्येकस्तस्य नामानि यानि, कर्माडप्येकं तस्य देवस्य सेव।।'

अर्थात् मुख्य शास्त्र भगवान् श्रीकृष्ण के वाक्य श्रीमद् भगवद् गीता है। मुख्य देव जिसकी सेवा करनी चाहिए, वे देवकी–पुत्र भगवान श्रीकृष्ण ही पर ब्रह्म हैं। भगवान श्रीकृष्ण का नाम ही मुख्य मन्त्र है और भगवान श्री कृष्ण की सेवा करना ही जीव का मुख्य कर्तव्य है।

भगवान के अनुग्रह (पोषणं तद्नुग्रह) को ही मुक्ति का एक मात्र साधन बतलाने का सिद्धान्त आधुनिक नहीं है, यह तो वेदकाल से चला आ रहा है। यह सूत्र उपनिषदों में यत्र–तत्र पाया जाता है। मुण्डक उपनिषद् में भी कहा गया है कि जो उस ईश्वर की कृपा पा सकता है वही उसे प्राप्त कर सकता है –

'नायमात्मा प्रबचनेन लभ्यो
न मेघया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष
आत्मा विवृषुते तनूं स्वाम्।।'[१०८]

कठोपनिषद् में भी कहा गया है कि भगवान के प्रसाद से ही आत्मा का कल्याण होता है–

'तमक्रतुः पश्यति वीतशोको
धातुप्रसादान्महिमान मात्मनः।'[१०९]

श्रीमद् भागवत में कहा गया है कि भगवान कल्पतरु के से स्वभाव वाले हैं, जो भक्त के समस्त पापों को अपने में समा कर भक्त को मुक्ति प्रदान करते हैं–

'चित्रं तवेहितमहोडमितयोग माया–
लीला विसृष्ट भुवनस्य विशारदस्य।
सर्वात्मनः समदृशों विषमः स्वभावो
भक्तप्रियो यदसि कल्पतरु स्वभावः।।'[११०]

श्रीमद् भागवत में भी भगवान के अनुग्रह को प्रधान माना गया है। अन्ततः देखने पर पता चलता है कि वल्लभाचार्य का यह भगवद् अनुग्रह का सिद्धांत प्राचीन है। भगवान की जीवों पर असीम कृपा रहती है–

'सत्यं दिशत्यथितमर्थितो नृणां
नैवार्थदो यत्पुनर्स्थता यतः।
स्वयं विद्यते भजतामनिच्छता
मिच्छापिधानं निजपाद् पल्लवम्।।'[१११]

१९. भारतीय संस्कृति में पुष्टिमार्ग का स्थान :-

१. भारतीय संस्कृति में मध्यकालीन भारत ::

एकता में अनेकता की भावना भारतीय संस्कृति की विशेषता है। इसकी प्रेरणा हमें वैदिक काल से मिलती रही है। भारत एक धर्मपरायण देश है। विश्व के सभी धर्म इस बात का स्वीकार करते हैं कि मानव को सत्य, आनंद व शान्ति की खोज में सर्वेश्वर परब्रह्म की शरण में जाना चाहिए। मध्यकाल का समय दासता,

यातना,पाखण्ड, विलासिता और निराश का युग था। पूरा देश मुसलमानी शासकों के अत्याचारों से पीड़ित था। देश के पवित्र तीर्थ स्थल, देवालय, धर्म पीठ सर्वतः नष्ट–भ्रष्ट हो गए थे। धर्म का शुद्ध स्वरूप तिरोहित–सा हो गया था। हिन्दू शासक वर्ग पारस्परिक कलह, फूट आदि के कारण अपनी आत्मशक्ति क्षीण करते जा रहे थे। पुष्टिमार्ग के संस्थापक वल्लभाचार्य ने अपने ग्रंथ 'कृष्णाश्रय स्तोत्र' में वर्तमान भारत की दुर्दशा का वर्णन किया है। मुसलमानी शासकों के अत्याचारों के अनन्तर हमें दो महानुभावों के दर्शन हुए जिन्होंने निःसाधन भक्ति मार्ग का आविष्कार किया है –महाप्रभु वल्लभाचार्य और चैतन्य गौरांग महाप्रभु ।

वल्लभाचार्य ने अपने हृदय में भगवान बालकृष्ण की पराभक्ति उद्‌भूत की तो लगभग इसी समय में चैतन्य महाप्रभु में उत्कट भगवद् विरह अवस्था का, ताप–क्लेश का अनुभव कराती यही परा भक्ति दृष्टिगोचर होती है।[११२]

ये जो दो प्रकार विकसित हुए उन्हें हम क्रमशः ईसाई धर्म के निःसाधन शरणमार्ग और ईरान के सूफीवाद अर्थात् उत्कट भगवद् रूप प्रिया–विरह के सिद्धान्त के साथ तुलनीय मान सकते हैं। ईसाई सिद्धान्त में निःसाधन शरणकोटि एक महत्व का प्रकार है, जिसमें जीव सदा ही ईश्वर की शरणागति स्वीकार किये रहता है और किसी भी साधन के बिना ही सदा भगवत् प्रवणता साधे रहता है। इनकी अपेक्षा बहुत उद्दीप्त मानसी सेवा का सिद्धान्त वल्लभाचार्य ने पुष्टिमार्ग में बताया है, जिसमें सतत भगवद्–सामुख्य, भगवत् प्रवणता रखना बताया गया है। सूफीवाद में ईश्वर अर्थात् भगवान प्रिया हैं और जीवात्मा प्रिय है, यह भावना रखी जाती है। वल्लभ तथा चैतन्य के सिद्धान्तों की उत्कट कक्षा में ईश्वर अर्थात् भगवान प्रिय है और जीवात्मा प्रिया है।[११३] इस तरह धर्माचार्य महापुरुष अपनी निजी आध्यात्मिक साधना के बल पर लोक पीड़ा का उपभोग करते हैं तथा उनके मंगलमय परिणामों का स्वाद जन–जीवन युग–युग तक करता रहता है। मनुष्य को मुनष्यता के अनुरूप आचरण करना चाहिए। इससे समस्त मानव जाति का कल्याण होगा। श्रुति (वेद), स्मृति (धर्मशास्त्र), सदाचार और आत्मा की

प्रसन्नता–इन चार बातों पर धर्म का निर्णय होता है। धर्म दो प्रकार के हैं–एक सामान्य, दूसरा विशिष्ट। सामान्य धर्म मानव धर्म है जबकि विशिष्ट धर्म देश काल, भौगोलिक स्थिति के अनुकूल भिन्न–भिन्न हो सकता है। जैसे ईसाई, हिन्दू, मुस्लिम, जैन, सिख, पारसी आदि।[११४]

भारतीय संस्कृति 'सत्य शिवं और सुन्दरम' की भावना पर आधारित है। इसी के अनुरूप विचारशील महानुभावों ने समय–समय पर भिन्न–भिन्न आदर्श व कल्याणकारी जीवन की व्याख्या दी है, जिसमें भक्ति मार्ग अपनी एक अलग विशिष्टता लिए हुए है। जो प्रारम्भ में मातृत्व भावना के प्रतिफलरूप वात्सल्य, विश्वबन्धु की भावना के प्रतिफलरूप साख्य और दाम्पत्य भावना के प्रतिफलरूप माधुर्य भाव से विश्व की क्रीड़ा स्थली में मानव जीवन के साथ चलता रहा है।

२. समाज में पुष्टिमार्ग का स्थान ::

पुष्टिमार्ग समाज को धारण तथा पोषण करनेवाला भक्ति मार्ग है। इस मार्ग का सिद्धान्त है शुद्ध एकता का स्थापन कर जीव को ब्रह्म की ओर प्रेरित किया जाए, ताकि जीव स्वतः शुद्ध अद्वैत रूप में परिणत हो जाए। इस आत्म सम्बन्ध (जीव का ब्रह्म से सम्बन्ध (ब्रह्म सम्बन्ध)) के द्वारा व्यक्ति को, समाज को स्थिर कर सुख, शान्ति, सद्भावना का विस्तार करना ही पुष्टिमार्ग का कर्तव्य रहा है। मानव मात्र को प्रेम स्नेह के साथ आगे बढ़ना चाहिए। प्राणीमात्र के शुभ कल्याण की कामना ही भारतीय संस्कृति का लक्ष्य रहा है।[११५] वल्लभाचार्य द्वारा स्थापित पुष्टिमार्ग जहाँ मन, इन्द्रियाँ, भाव आदि को पुष्ट कर व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व को पुष्ट कर प्रेम, स्नेह, सदाचार आनन्द का साम्राज्य स्थापित करता है। पुष्टि भगवान की शक्ति है, भगवान की दृष्टि है जो भगवान के अनुग्रह को व्यक्त करती है। भगवान रस रूप–आनन्द रूप हैं। यह रस और आनंद प्रेम से उपलब्ध होता है। भगवत संबंधी प्रेम का प्रसार कर व्यक्ति अपनी, अपने परिवार की, अपने समाज की, अपने राष्ट्र की और अन्तः विश्व की उन्नति के शिखर पर पहुँच सकता है।

जो कुछ हो रहा है वह भगवद इच्छा से हो रहा है, यह विवेक है। हर परिस्थिति को शान्त भाव से सहन करना धैर्य है और केवल भगवान् को ही आश्रय मानना चाहिए। यह विवेक–धैर्य–आश्रय पुष्टिमार्ग का स्वर्ण सूत्र है, जो व्यक्ति विशेष द्वारा भारतीय संस्कृति में निहित है। पुष्टिमार्ग–भक्तिमार्ग में सच्चिदानंद परब्रह्म श्रीकृष्ण ही केन्द्र बिन्दु हैं। अतः जीव को अपना सर्वस्व भगवान श्रीकृष्ण को समर्पित करना है–

'समस्त विषय त्यागः सर्वभावेन यत्रहि
समपर्ण च देहादेः पुष्टिमार्ग सकथ्यतो।'[११६]

सारांश यह है कि पुष्टिमार्ग–प्रेम लक्षणा भक्ति का सर्वोत्तम, विलक्षण मार्ग है जो सर्वथा भारतीय संस्कृति के अनुरूप है। भारतीय संस्कृति में वर्ण व्यवस्था का अपना महत्व है। पुष्टिमार्ग भी वर्ण व्यवस्था का समर्थक है। यदि प्रत्येक व्यक्ति वर्ण व्यवस्था के अनुरूप जीवन निर्वाह करे तो व्यक्ति व समाज सभी की प्रगति होगी। पुष्टिमार्ग में भगवद् सेवा का विधान कुछ इस प्रकार बनाया गया है कि समाज का कोई वर्ण (वर्ग) इससे अछूता नहीं रहता। पुष्टिमार्ग में अखिल विश्व का कोई भी प्राणी दीक्षित हो सकता है। जैसे–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्री, मुसलमान आदि। श्रीनाथ जी की नित्य सेवा और वर्षोत्सव की सेवा में अहीर, जाट, भाट, कायस्थ, नाई, कुम्हार, लुहार, कुनबी, दर्जी, रंगरेज, माली, धोबी आदि सभी को प्रभु की सेवा का समान अधिकार प्राप्त है। इस प्रकार पुष्टिमार्ग में दलितों के उत्थान के लिए एक बड़ा कदम वल्लभाचार्य द्वारा उठाया गया था। स्त्रियों की दशा सुधारने के उद्देश्य से पुष्टिमार्ग के स्थापक वल्लभाचार्य ने ब्रजांगनाओं को पुष्टिमार्ग की गुरु बनाया है। वल्लभाचार्य का कथन है कि भगवान को देखना तो वास्तव में स्त्रियाँ जानती हैं। इस प्रकार वल्लभाचार्य ने अपने पुष्टिमार्ग में प्राणीमात्र के द्वारा श्रीनाथ जी की सेवा व्यवस्था की थी। पुष्टिमार्ग में व्यक्ति गृहस्थ बन कर संसार की समस्त बाधाओं को साथ लेकर अपने परिवार–समाज की सहायता से भगवद्–सेवा करते हुए अपने जीवन की सार्थकता सिद्ध करता है। यह पुष्टिमार्ग की

महत्वपूर्ण बात है जो भारतीय संस्कृति को और उन्नत बनाती है। धर्म को जन–साधारण के लोक जीवन में नित्य के लिए जोड़ देना पुष्टिमार्गीय सेवा की ही देन है जिसके लिए समाज युग–युग तक पुष्टिमार्ग का ऋणी रहेगा।

पुष्टिमार्ग ने भक्ति और अध्यात्म के साथ कला को भी नया जीवन प्रदान किया है। पुष्टिमार्ग में बालकृष्ण लाल जी की प्रातःकाल से सायंकाल की सेवा में संगीत की मधुर लहरियाँ, विविध स्वादिष्ट व्यंजन, शृंगारि वस्त्राभूषण तथा विभिन्न ऋतुओं के अनुसार विभिन्न पर्वों में कला का सर्वोत्कृष्ट उपयोग देखने को मिलता है। जैसे–हिड़ोले, सांझी, छप्पनभोग–अन्नकूट, अलंकार इत्यादि। पुष्टि सम्प्रदाय के आचार्य महानुभावों ने प्रभु श्रीनाथ जी की सेवा के साथ–साथ साहित्य सृजन में भी अपना अनुपम योगदान दिया है।

मध्यकाल में ब्रज भाषा का सर्वातिशय मधुर साहित्य पुष्टिमार्ग की देन है। वल्लभाचार्य द्वारा निर्मित और विट्ठलनाथ जी द्वारा प्रचारित–प्रसारित पुष्टि सम्प्रदाय के दार्शनिक सिद्धान्त और भक्ति तत्व का सरस भाष्य मुख्यतः अष्टछाप के पदों में मिलता है, जो हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि हैं। सूरदास जी की रचनाओं का लोहा तो आज विश्व के विद्वान वर भी मानते हैं यह पुष्टिमार्ग की ही देन है।

आज समय बड़ी तेजी से आगे बढ़ रहा है रोज के वैज्ञानिक व तकनीकी आविष्कारों ने विश्व को छोटा कर दिया है। किन्तु आज की इस भाग–दौड़ में मनुष्य अपने जीवन के वास्तविक लक्ष्य की ओर ध्यान ही नहीं दे पाता है। मानव जीवन क्षण–क्षण आज के भौतिक प्रलोभनों में फंस कर जैसे अर्थहीन–सा होता जा रहा है। हर तरफ अशान्ति, अनीति, भ्रष्टाचार, शोषण आदि दुष्टाचार देखने को मिलते हैं। ऐसे समय में पुष्टिमार्ग ही ऐसा प्राचीन भक्तिमार्ग है जो हमारी भारतीय परम्पराओं को यथावत रखते हुए भी हमें वर्तमान युग का सरल–सुलभ जीवन जीने का मार्ग दिखाता है। वल्लभाचार्य ने पुष्टिमार्ग के द्वार अखिल विश्व के लिए

आज भी खुले रखे हैं। पुष्टिमार्ग सर्वथा कृपा मार्ग (अनुग्रह) है, अतः इसे कलिकाल भी बाधा नहीं पहुँचा सकता–

'कृष्णश्चेत् सेव्यते भक्तया कलिस्तस्य फलाय हि।

******

:: संदर्भ सूची ::

१. 'श्रावणस्याड़मले पक्ष एकादश्यां महानिशि।
साक्षाद् भगवता प्रोक्तं तदक्षरश उच्चते।।
ब्रह्म सम्बन्धकरणात् सर्वेषां देहजीवयोः।
सर्व दोष निवृतिर्हि दोषाः पंच विधाः स्मृताः।।'
ब्रज के धर्म सम्प्रदायों का इतिहास – २१९, लेखकः प्रभु दयाल मीतल

२. ब्रज के धर्म सम्प्रदायों का इतिहास – २१९, लेखकः प्रभु दयाल मीतल

३. ब्रज के धर्म सम्प्रदायों का इतिहास – २३३, लेखकः प्रभु दयाल मीतल

४. + श्रीमद् भागवत् – २/१०/१
+ श्रीमद् वल्लभ दर्शन एवं भक्ति सिद्धांत – १३
लेखिका : श्रीमती प्रतिभा व्यास

५. 'केचन भक्ताः स्वगृहेषु एव स्नहेन भगवदाकारे विविघोपचारैं,
सेवां कुर्वन्तः तथैव निर्वृत्या मुख्तिमणि तुच्छां मन्यन्ते।'
अणुभाष्य–२७, लेखक :डॉ. वाचस्पति शर्मा

६. 'पुष्टिमार्गो नुग्रहैक साध्यः प्रमाणमार्गा द्विलक्षणः।'
अणुभाष्य–२५, लेखक : डॉ. वाचस्पति शर्मा

७. 'अलौकिक हि वेदार्थो न मुक्त्या प्रतिपद्यते।
तपसा वेदयुक्ता तु प्रसादात् परमात्मनः।'
अणुभाष्य–२७, लेखकः डॉ. वाचस्पति शर्मा

८. 'विषयाक्रान्तदेहानां नावेशः सर्वथा हरेः।'– सन्यास निर्णय, ६

९. 'स्वयमिन्द्रिय कार्याणि कायवाड् मनसा त्यजेत्।
अशूरेणाडपि कर्तव्यं स्वस्या सामर्थ्थ भावनात्।।'– विवेक धैर्याश्रय, ८

१०. 'कामादिनां शिथिलत्वे भक्तिर्नोत्पत्स्यते।'– श्री सुबोधिनी टीका

११. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय–३९५
लेखक : डॉ. दीन दयालु गुप्त

१२. २५२ वैष्णवन की वार्ता (भाग–।।।) (विश्लेषणात्मक अध्ययन–२२)
लेखक : द्वारकादास परीख

१३. 'महात्मयज्ञानपूर्वस्तु सुदृढः सर्वतोधिक।'
अणुभाष्य–३०, लेखक : डॉ. वाचस्पति शर्मा
१४. 'यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोतमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तम।।'
श्रीमद् भगवद गीता (अध्याय–१५)
१५. 'परंब्रह्म तु कृष्णो हि सच्चिदानन्दकं वृहत्।'– सिद्धान्त मुक्तावली, श्लोक–३
१६. 'श्रवणं कीर्तन विष्णोः स्मरण पादसेवनम्।
अर्चन वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।।'
श्रीमद् भागवत् महापुराण (७/५/२३)
१७. 'एवं शास्त्र देवकी पुत्रगींत, ऐको देवो देवकीपुत्र एव।
मंत्रोऽप्येकस्तस्य नामानि यानि, कर्माऽप्यके तस्य देवस्य सेव।।'
ब्रज के धर्म सम्प्रदायों का इतिहास–२३९, लेखक : प्रभु दयाल मीत्तल
१८. + २५२ वैष्णवन की वार्ता
+ श्री नाथ जी की प्राकट्य वार्ता
+ महाप्रभु जी की प्राकट्य वार्ता
१९. २५२ वैष्णवन की वार्ता में 'हरिदास बनिया की वार्ता' (प्रसंग सं. १)
२०. ८४ वैष्णवन की वार्ता में 'सूरदास की वार्ता' (प्रसंग सं. १)
२१. २५२ वैष्णवन की वार्ताओं और ८४ वैष्णवन की वाताओं से
यह बात निश्चित हो जाती हैं
२२. श्रीमद् वल्लभाचार्यः व्यक्तित्व, सिद्धान्त और संदेश (।।), पृ. १४८
लेखक : डॉ. गजानन शर्मा
२३. + श्रीमद् वल्लभाचार्यः व्यक्तित्व, सिद्धान्त और संदेश (।।), पृ. १४८
लेखक : गजानन शर्मा
+ हीरक जयन्ती ग्रंथ–पृ. ११४
साहित्य मण्डल, नाथद्वारा
२४. ये सब्जियाँ शुद्ध घी में बनाई जाती है इनमें पानी या तेल का उपयोग नहीं
किया जाता, इस कारण ये करीब १५ दिनों तक ताजा सी बनी रहती हैं।
२५. 'मुक्ति कहे गोपाल ते मेरी मुक्ति बताय,
ब्रज रज उड़ मस्तक लगे मुक्ति मुक्त हो जाया।'
महाप्रभु वल्लभाचार्य जी का पुष्टिमार्ग एवं पुष्टिमार्गीय ग्रंन्थावली–३७, लेखक : हरिदास आगरा
२६. ब्रज वैभव–२९७,
लेखक : ज्यो. राधेश्याम द्विवेदी

२७. इस बात का उल्लेख गर्ग सहिता तथा स्कंध पुराण में मिलता है
महाप्रभु वल्लभाचार्य जी का पुष्टिमार्ग एवं पुष्टिमार्गीय ग्रन्थावली – ३७
लेखक : हरिदास आगरा

२८. विश्राम घाट–मथुरा जहाँ शमशान था उसे हटवा कर वहाँ बस्ती बसाई। गोकुल भी जो कांटो से ढका हुआ था। उसे अपने सेवकों द्वारा कटवा कर वहाँ भी बस्ती बसाई।

२९. महाप्रभु जी की निज वार्ता, घरु वार्ता, बैठक चरित्र इत्यादि

३०. 'गुरु बिन ऐसी कौन करै।
माला तिलक मनोहर बानो, ले शिर घरै ।।
भवसागर ते बूढत राखै, दीपक हाथ घरै।
सूरश्याम गुरु ऐसो समरथ, छिन मैं ले उद्धरै ।।' (सूरदास)

३१. "श्रृण्वन्ति, गायन्ति, गृष्यन्त्य भीक्ष्णषः स्मरन्ति नन्दन्ति तवे हितं जनः।
त एवं पश्यन्त्यचिरेण तारखं भव प्रवाहो परम् पदाम्पुजम्।"

३२. 'यह माँगो श्री गोपीजन वल्लभ। मनुष्य जन्म और हरि सेवा,
ब्रज वसिवों दीजौं मोहि सुल्लभ।'

३३. श्रिया पुटष्या गिरा कान्त्या कीर्त्या तुष्टयेलयोर्जया।
विधया–विधया शक्त्या मायया च निवेवितम्।। – श्रीमद् भागवत्।
(१०.३९.५५)

३४. 'गोपिका प्रोक्ताः गुरवः' सन्यास निर्णय (षोडष ग्रंन्थ)

३५. 'सेवा रीति–प्रीति ब्रज जन की जनहित जग प्रकटाई।'

३६. 'कृपयति यदि राधा बाधिताशेषबाघा
किमपरमवशिष्ट पुष्टिमर्यादियो में,
यदि वदति च किंचित् स्मेरहंसोदित श्री द्विजक्रमणि पडत्क्त्या मुक्ति शुंक्त्यातदा किं।। १ ।।
श्यामसुन्दर ! शिखण्डशेखर ! स्मेरहारय ! मुरलीमनाहर !
राधिकाररसिक ! मां कृपानिघे ! स्वप्रियाचरण–किं करी करु ।। २ ।।
प्राणनाथ ! वृषभानु नन्दिनी–श्री मुखाब्जर–सलोल षट्पद।
राधिकापदतले कृतस्थितिस्त्वां भजामि रसिकेन्द्रशेखर ।। ३ ।।
संविघाय दशने तृणं विभो !
प्रार्थये ब्रजमहेन्द्र–नन्दन !
अस्तु मोहन। तवातिवल्लभा जन्मजन्मानि मदोश्वरी प्रिया।। ४ ।।'

३७. श्री वल्लभाचार्य : व्यक्तित्व, सिद्धांत और सन्देश– (।।)
(श्री वल्लभ सम्प्रदाय में श्री राघा–७८), लेखक : प्रो. श्री कण्ठमणिजी शास्त्री

३८. श्रीनाथ जी की प्राकट्य वार्ता
३९. श्रीमद् भागवत महापुराण (दशम स्कन्घ)
(गोवर्धन धारण लीला प्रसंग)
४०. श्री नाथ जी के प्राकट्य की वार्ता
४१. श्री नाथ जी के प्राकट्ंय की वार्ता
४२. + श्री नाथ जी की प्राकट्य वार्ता, + श्री महाप्रभु जी की प्राकट्य वार्ता
४३. भगवान् के गुण, तत्व, रहस्य और प्रभावादि को जानकर श्रद्धा प्रेमपूर्वक उनकी सेवा करना और उनकी समस्त आज्ञा का पालन करना दास्य भक्ति हैं।
४४. षट् ऋतु की वार्ता
४५. वैष्णव दर्शन माला–(रासलीला : जिज्ञासा, आक्षेप, समाधान)
लेखक : डॉ. गजानन शर्मा
४६. श्रीमद् भागवत महापुराण (१०.२९.१९)
४७, ४८, ४९ वैष्णव दर्शन माला
(पुष्टिमार्ग में रास लीला का स्वरूप)
लेखक : डॉ. गजानंन शर्मा
५०. कुछ अन्य विचारक विद्वान २९ से ३३ तक के पाँचों अध्याय को रासपंचाध्यायी मानते हैं।
पोद्दार अभिनंदन ग्रंथ – (रासपंचाध्यायीः भागवत – ३९५)
लेखक : गोविंदलाल हरगोविंद भट्ट
५१. पोद्दार अभिनन्दन ग्रंथ, (रासपंचाध्यायीः भागवत – ३९५)
लेखक : गोविंदलाल हरगोविंद भट्ट
५२. 'रासोत्सवः सम्प्रवृती गोपीमण्डलमण्डितः।'– वैष्णव दर्शन माला
(पुष्टिमार्ग में रासलीला का स्वरूप) लेखक : डॉ. गजानन शर्मा
५३. उत्सवोंनाम मनस : सर्व विस्मारक आह्लादः।
वैष्णव दर्शन माला,
(पुष्टिमार्ग में रासलीला का स्वरूप) लेखक : डॉ. गजानन शर्मा
५४. निःरसाधन जीव–गोपियाँ–जो ज्ञान, कर्म काण्ड आदि के शास्त्रार्थ – वेदोक्त मार्गो को नहीं जानती है।
५५. पोद्दार अभिनन्दन ग्रंथ, (रास पंचाध्यायी : भागवत – ३९६)
लेखक : गोविंदलाल हरगोविंद भट्ट
५६. ब्रज लोक वैभव (रास लीला की प्राचीन परम्परा – ४३३)
लेखक : श्री रामनारायण अग्रवाल
५७. हीरक जयन्ती ग्रंथ
(ब्रज में वैष्णव भक्ति रस का जीवन मंचः रासलीला – १७४, १७६)

लेखक : विष्णुचन्द्र पाठक

५८, ५९, पुष्टि पाथेय – (रास : एक महती लोक कला – २९०, २८९)
लेखक : श्री शर्मनलाल अग्रवाल

६०. ब्रज लोक वैभव (रास लीला की प्राचीन परम्परा –४३६)
लेखक : श्री रामनारायण अग्रवाल

६१. पोद्दार अभिनंदन ग्रंथ
(रास लीला की प्राचीन परम्परा – ८८०, ८८१)
लेखक : श्री रामनारायण अग्रवाल

६२. हीरक जयन्ती ग्रंथ
(ब्रज में वैष्णव भक्ति रस का जीवन मंचः रासलीला – १७७)
लेखक : विष्णुचन्द्र पाठक

६३. पोद्दान अभिनन्दन ग्रंथ
(रास लीला का उदय और विकास – ८८५) लेखक : श्री रामनारायण अग्रवाल

६४. पुष्टि पाथेय
+ (रास : एक महती लोक कला – २८९)
लेखक : श्री शर्मनलाल अग्रवाल
+ (रास और उसका विकास – ३०९)
लेखक : डॉ. अम्बाप्रसाद 'सुमन'

६५. हीरक जयन्ती ग्रंथ (ब्रज में वैष्णव भक्ति रस का जीवन मंचः रासलीला – १७६)
लेखक : विष्णुचन्द्र पाठक

६६. हीरक जयन्ती ग्रंथ (ब्रज में वैष्णव भक्ति रस का जीवन मंचः रासलीला – १७८)
लेखक : विष्णुचन्द्र पाठक

६७. हीरक जयन्ती ग्रंथ (ब्रज में वैष्णव भक्ति रस का जीवन मंचः रासलीला – १८१)
लेखक : विष्णुचन्द्र पाठक

६८. मध्यकाल में भैरवी, गौड़ी, रामकली, मालव, विलावल, षट, सोरठ, हमीर जैसे रागों का प्रयोग रासलीला गायन में होता था। किन्तु आज उचित प्रशिक्षण के अभाव में सामान्य संगीत ही सुनने को मिलता हैं।

६९. हीरक जयन्ती ग्रंथ (ब्रज में वैष्णव भक्ति रस का जीवन्त मंचः रासलीला – १८०)
लेखक : विष्णुचन्द्र पाठक

७०. पुष्टि पाथेय
(पुष्टिमार्गीय चिन्ह : तिलक – १०९)
लेखक : वसन्त राम शास्त्री

७१. महाप्रभु श्रीमद् वल्लभाचार्य जी का पुष्टिमार्ग एवं पुष्टिमार्गीय ग्रन्थावली – ३१४,

लेखक : हरिदास आगरा
७२. महाप्रभु श्रीमद् वल्लभाचार्य जी का पुष्टिमार्ग एवं पुष्टिमार्गीय ग्रन्थावली – ३१५,
लेखक : हरिदास आगरा
७३. महाप्रभु श्रीमद् वल्लभाचार्य जी का पुष्टिमार्ग एवं पुष्टिमार्गीय ग्रन्थावली – ३१४,
लेखक : हरिदास आगरा
७४. महाप्रभु श्रीमद् वल्लभाचार्य जी का पुष्टिमार्ग एवं पुष्टिमार्गीय ग्रन्थावली – ३१८,
लेखक : हरिदास आगरा
७५. महाप्रभु श्रीमद् वल्लभाचार्य जी का पुष्टिमार्ग एवं पुष्टिमार्गीय ग्रन्थावली – ३१८,
लेखक : हरिदास आगरा
७६, ७७, हीरक जयन्ती परिशिष्टांक
(पुष्टिमार्ग वैष्णवों के लक्षण : तुलसी कण्ठी व तिलक का महत्व – १७७)
लेखिका : दक्षा भाटिया
७८. हीरक जयन्ती परिशिष्टांक
(पुष्टिमार्ग वैष्णवों के लक्षण : तुलसी कण्ठी व तिलक का महत्व – १७७)
लेखिका : दक्षा भाटिया
७९. वैष्णव दर्शन माल (शुद्धाद्वैत पुष्टिमार्ग में लीला की अवधारणा)
लेखक : गजानन शर्मा
८०. 'लीला नाम विलासेच्छा। कार्यव्यतिरेकेण कृतिमात्रम्।
न तया कृत्या बहिः कार्य जन्यते। जनितमपि कार्य नाभिप्रेतम्।
नापि कर्तरि प्रयासं जनयति। किन्तु अन्तः करणे पूर्ण आनंद तदुल्लासेत कार्य
जनम सदृशी क्रिया कातिदुत्पद्यते।'
वैष्णव दर्शन माला
(शुद्धाद्वैत पुष्टिमार्ग में लीला की अवधारणा)
लेखक : डॉ. गजानन शर्मा
८१. 'न हि लीलायां किंचित् प्रयोजनमस्ति लीलाया एव प्रयोजनत्वान्'
वैष्णव दर्शन माला
(शुद्धाद्वैत पुष्टिमार्ग में लीला की अवधारणा)
लेखक : डॉ. गजानन शर्मा
८२. श्रीमद् वल्लभाचार्य : व्यक्तित्व, सिद्धान्त और संदेश – (I) – २०४
लेखक : डॉ. गजानन. शर्मा
८३. श्रीमद् वल्लभाचार्य : व्यक्तित्व, सिद्धान्त और संदेश – (II)
(लीला का रहस्य – २५२) लेखक : पण्डित बलदेव उपाध्याय
८४, ८५, दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता (भाग– ३)

(विश्लेषणात्मक अध्ययन) लेखक : द्वारकादास परीख

८६. 'स्वलीला कीर्ति विस्तारात् लोकेष्वनु जिघुक्षुता
अस्य जन्मादि लीलानां प्रकटचे हेतुरुतम ।।'
पोद्दार अभिनंदन ग्रथ (प्रकट लीला या नर लीला – ६३५)
लेखक : हजारीप्रसाद द्विवेदी

८७. 'लीला विशिष्टमेव शुद्ध परमं ब्रह्म, न कदाचित् तद्रहित मित्यर्थः
ते च (लीलायाः) जित्यत्वम्।'
वैष्णव दर्शन माला (शुद्धाद्वैत पुष्टिमार्ग में लीला की अवधारणा)
लेखक : डॉ. गजानन शर्मा

८८. 'सदानंतैः प्रकाशैः स्वैर्लीलामिश्च स दीव्यति।
तत्रैकेन पकाशेन कदाचिज्जगदंतरे ।।
सदैव स्वपरीवारैर्जन्मादि कुरुते हरिः।'
पोद्दार अभिनन्दन ग्रंथ
(प्रकट लीला या नर लीला – ६३५)
लेखक : हजारीप्रसाद द्विवेदी

८९. 'ब्राह्याभ्यन्तरभेदेन आन्तरं तु परं फलम्।'
श्रीमद् वल्लभाचार्य : व्यक्तित्व सिद्धान्त और संदेश – (।) – २०४
लेखक : डॉ. गजानन शर्मा

९०. २५२ वैष्णवन की वार्ता (भाग– ३) (विश्लेषणात्मक अध्ययन – ४४, ४५)
लेखक : द्वारकादास परीख

९१. वैष्णव दर्शन माला (शुद्धाद्वैत पुष्टिमार्ग में लीला की अवधारणा)
लेखक : डॉ. गजानन शर्मा

९२. हीरक जयन्ती ग्रंथ (पुराणों में ब्रज महिमा – १०),
लेखक : डॉ. रमेशचन्द्र मिश्र

९३. हीरक जयन्ती परिशिष्टांक (ब्रज गौरव–गरिमा – ८२)
लेखक : डॉ. जगदीश लवानिया

९४. 'वन्दे नन्द ब्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः।
यासां हरिकथोद् गीतं पुनाति भुवनयंत्रम्।'– हीरक जयन्ती परिशिष्टांक
(पुराणों में ब्रज महिमा – १६) लेखक : डॉ. रमेशचन्द्र मिश्र

९५. 'आसामहो चरणरेणुजषामहं स्यां वृन्दावने किमपि गुल्म लतौषधीनाम्।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा। भेजुर्मुकुन्द पदवी श्रुतिभिर्विभृग्याम्।।'
पोद्दार अभिनन्दन ग्रंथ (प्रकट लीला या नर लीला – ६३६), ले. हजारीप्रसाद द्विवेदी

९६. २५२ वैष्णवन की वार्ता (भाग– ३)

(विश्लेषणात्मक अध्ययन– ४५)
लेखक : द्वारकादास परीख

९७. श्रीमद् वल्लभाचार्यः व्यक्तित्व, सिद्धान्त और संदेश (।।)
(पुष्टिमार्ग के परम सेव्य भगवान् श्री नाथ जी – ६२)
लेखक : श्री हरिनारायरण नीमा

९८. महाप्रभु श्रीमद् वल्लभाचार्य और पुष्टिमार्ग – १९१
लेखक : सीताराम चतुर्वेदी

९९. श्रीमद् वल्लभाचार्यः व्यक्तित्व, सिद्धान्त और संदेश – (।।)
(पुष्टिमार्ग के परम सेव्य भगवान् श्री नाथ जी – ६२)
लेखक : श्री हरिनारायरण नीमा

१००. श्री नाथ जी की प्राकट्य वार्ता

१०१. हीरक जयन्ती ग्रंथ (भगवान श्री नाथ जी का स्वरूप – ७९)
लेखक : नन्दलाल न्याती

१०२. हीरक जयन्ती ग्रंथ (वल्लभ सम्प्रदाय के परमाराध्य भगवान श्री नाथ जी – ७१)
लेखक : श्री श्यामप्रकाश देवपुरा

१०३. हीरक जयन्ती ग्रंथ
(देवालय ध्वजः महत्व और भगवान श्री नाथ जी के सप्त ध्वज – ४२१)
लेखक : रामशरण

१०४, १०५, हीरक जयन्ती ग्रंथ
(देवालय ध्वजः महत्व और भगवान श्री नाथ जी के सप्त ध्वज – ४२१, ४२२)
लेखक : रामशरण

१०६. हीरक जयन्ती ग्रंथ
(श्री नाथ जी मंदिर का ध्वज दण्ड और उसका महत्व – ५५६)
लेखिका : डॉ. पुष्पा भारद्वाज

१०७. हीरक जयन्ती ग्रंथ
(देवालय ध्वजः महत्व और भगवान श्री नाथ जी के सप्त ध्वज – ४२१)
लेखक : रामशरण

१०८. वैष्णव सम्प्रदायों का साहित्य और सिद्धान्त – ३६०
लेखक : आचार्य बलदेव उपाध्याय

१०९, ११०, १११, वैष्णव सम्प्रदायों का साहित्य औंर सिद्धान्त – ३६०,
लेखक : बलदेव उपाध्याय

११२. 'भक्ति मार्गो बहु विद्यमार्गो भामिनी भाव्यते' – श्रीमद् भागवत् के इस कथन के प्रकाश में अनेकानेक भागवत धर्माचार्यों ने भक्तिमार्ग का प्रतिपादन अपने

अपने दृष्टिकोण से किया है।

– श्रीमद् वल्लभाचार्य : व्यक्तित्व सिद्धान्त और संदेश–(।।) (भक्ति मार्ग में पुष्टि भक्ति की महता – ५८)

लेखक : गोस्वामी जी ब्रज रत्न लालजी महाराज

११३. श्रीमद् वल्लभाचार्य : व्यक्तित्व, सिद्धान्त और संदेश – (।।)
(निः साधान भक्तिमार्ग : एक तुलनात्मक दृष्टि – २५०)
लेखक : श्री के. का. शास्त्री

११४. हीरक जयन्ती परिशिष्टांक
(भारतीय संस्कृति में विश्व शान्ति, साम्प्रदायिक सद्भावना एवं राष्ट्रीय एकता की भावना – ३६४)
लेखक : भगवानलाल बंशीलाल

११५. सर्वे भवंतु सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यंतु मा कश्चिद् दुख भाग्भवेत।।
हीरक जयन्ती परिशिष्टांक
(भारतीय संस्कृति में विश्व शान्ति, राष्ट्रीय एकता की भावना – ३६१)
लेखक : भगवानलाल बंशीलाल

११६. पोद्दार अभिनंदन ग्रंथ (वल्लभाचार्य का साधन मार्ग – १९७)
लेखक : श्री बलदेव उपाध्याय

******